गोस्वामी तुलसीदासजी रचित
दोहावली
अनुवादक
हनुमान प्रसाद पोद्दार

प्रकाशक—मोतीलाल जालान गीताप्रेस, गोरखपुर

[भारत-सरकार द्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्यके कागजपर मुद्रित]

सं० १९९६ से २०३३ तक	३,४४,२५०
सं० २०३७ बाईसवाँ संस्करण	६०,०००
सं० २०३८ तेईसवाँ संस्करण	२०,०००
कुल	४,२४,२५०

चार लाख चौबीस हजार दो सौ पचास

मूल्य एक रुपया

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

मुद्रक—हिन्दुस्तानी आर्ट कॉटेज, गनेशगंज, लखनऊ

श्रीहरिः

नम्र निवेदन

दोहावली प्रातःस्मरणीय भक्तकुल-चूडामणि गोस्वामी तुलसी-दासजीकी प्रमुख कृतियोमे है और भक्त-समाजमें इसका बहुत आदर है। गोस्वामीजीने अपनी अनुभूतियोको बडे ही भावपूर्ण दोहोंमें व्यक्त किया है। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, प्रेम, नीति आदि विविध विषयोपर इतने सरस दोहे गोस्वामीजीकी कृतियोंके अतिरिक्त शायद ही कही मिलें। भक्तकी प्रासादिक वाणीका आनन्द और मिल ही कहाँ सकता है?

भगवान्‌की असीम अनुकम्पासे ही उनके भक्तोंकी अमृतवाणीके रसास्वादनका सौभाग्य प्राप्त होता है। दोहावलीकी टीका लिखते समय मेरा कुछ समय श्रीरामचर्चामें बीता, इसका मुझे अपार आनन्द एवं परम सतोष है। वस्तुतः जितना समय भगवान् और उनके भक्तोंकी चर्चामें बीते उतना ही समय सफल एवं सार्थक समझा जाना चाहिये। टीका लिखते समय स्थान-स्थानपर स्वर्गीय लाला भगवानदीनकी टीकासे सहायता ली गयी है। जिसका आभार हम सविनय स्वीकार करते हैं। मेरे सम्मान्य पं० श्रीचिम्मनलालजी

गोस्वामी, एम० ए०, शास्त्रीने टीकाको आदिसे अन्ततक देखा है तथा यथास्थान सुधारा और सँवारा है। उनके साथ मेरा प्रेमका सम्बन्ध है, अतएव उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन स्वयं मेरी ही दृष्टिमें अक्षम्य है।

इस टीकामें जो कुछ त्रुटि या दोष दीख पड़े, विज्ञ पाठक-पाठिकाएँ कृपापूर्वक मुझे सूचित कर दे तो अगले संस्करणमें सुधारा जा सकता है। संत, विद्वान् और महात्मागण मेरी इस धृष्टताके लिये क्षमा प्रदान करे।

विनीत
अनुवादक

श्रीहरिः

विषय-सूची

विषय पृष्ठ-संख्या

विषय पृष्ठ-संख्या

श्रीरामचतुष्टय

श्रीसीतारामाभ्यां नम·

दोहावली

ध्यान

राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर ।
ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर ॥१॥

भावार्थ—भगवान् श्रीरामजीकी बायी ओर श्रीजानकीजी हैं और दाहिनी ओर श्रीलक्ष्मणजी हैं—यह ध्यान सम्पूर्णरूपसे कल्याण-मय है। हे तुलसी ! तेरे लिये तो यह मनमाना फल देनेवाला कल्प-वृक्ष ही है ॥ १ ॥

सीता लखन समेत प्रभु सोहत तुलसीदास ।
हरषत सुर बरषत सुमन सगुन सुमंगल बास ॥२॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मण-जीके सहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी सुशोभित हो रहे है, देवतागण हर्षित होकर फूल बरसा रहे हैं। भगवान्‌का यह सगुण ध्यान सुमङ्गल—परम कल्याणका निवासस्थान है ॥ २ ॥

पंचबटी बट बिटप तर सीता लखन समेत ।
सोहत तुलसीदास प्रभु सकल सुमंगल देत ॥३॥

भावार्थ—पंचवटीमें वटवृक्षके नीचे श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजी-समेत प्रभु श्रीरामजी सुशोभित हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह ध्यान सब सुमङ्गलोको देता है ॥ ३ ॥

राम-नाम-जपकी महिमा

चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय लखन समेत ।
राम नाम जप जापकहि तुलसी अभिमत देत ॥४॥

भावार्थ—श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजीसहित प्रभु श्रीरामजी चित्रकूटमें सदा-सर्वदा निवास करते है। तुलसीदासजी कहते हैं कि वे राम-नामका जप जपनेवालेको इच्छित फल देते है ॥ ४ ॥

पय अहार* फल खाइ जपु राम नाम षट मास ।
सकल सुमंगल सिद्धि सब करतल तुलसीदास ॥५॥

भावार्थ—छः महीनेतक केवल दूधका आहार करके अथवा फल खाकर राम-नामका जप करो। तुलसीदासजी कहते है कि ऐसा करनेसे सब प्रकारके सुमङ्गल और सब सिद्धियाँ करतलगत हो जायँगी (अर्थात अपने-आप ही मिल जायँगी) ॥ ५ ॥

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार ।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर ॥६॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि तू भीतर और बाहर दोनों ओर प्रकाश (लौकिक एवं पारमार्थिक ज्ञान) चाहता है तो

---

*किसी-किसी प्रतिमे 'पय अह्लाइ' पाठ मिलता है; जिसका अर्थ होगा '[चित्रकूटमे स्थित] पयस्विनी नदीमे स्नान करके'। 'पय अहार' और 'फल खाइ' पाठ लेनेसे 'अहार' और 'खाइ' मे जो द्विरुक्ति प्रतीत होती है, उसीके निवारणके लिये सम्भवतः 'अहार' के स्थानमे 'अह्लाइ' संशोधन पीछेसे किया गया है। किंतु इस प्रकारके प्रयोग गोस्वामीजीने अन्यत्र भी किये हैं—देखिये रामचरितमानस् अयोध्याकाण्डका दोहा १८८—

पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग ।
करत राम हित नेम व्रत परिहरि भूषन भोग ॥

मुखरूपी दरवाजेकी देहलीपर रामनामरूपी [हवाके झोंके अथवा तेलकी कमीसे कभी न बुझनेवाला नित्य प्रकाशमय] मणिदीप रख दो (अर्थात् जीभके द्वारा अखण्डरूपसे श्रीराम-नामका जप करता रह) ॥ ६ ॥

हियँ निर्गुन नयनन्हि सगुन रसना राम सुनाम ।
मनहुँ पुरट संपुट लसत तुलसी ललित ललाम ॥७॥

भावार्थ—हृदयमें निर्गुण ब्रह्मका ध्यान, नेत्रोंके सामने प्रथम तीन दोहोंमे कथित सगुण स्वरूपकी सुन्दर झाँकी और जीभसे सुन्दर राम-नामका जप करना। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह ऐसा है मानो सोनेकी सुन्दर डिबियामें मनोहर रत्न सुशोभित हो। श्रीगुसाईंजीके मतसे 'राम' नाम निर्गुण ब्रह्म और सगुण भगवान् दोनोंसे बड़ा है—'मोरें मत बड़ नाम दुहू तें'। नामकी इसी महिमाको लक्ष्यमे रखकर यहाँ नामको रत्न कहा गया है तथा निर्गुण ब्रह्म और सगुण भगवान्‌को उस अमूल रत्नको सुरक्षित रखनेके लिये सोनेका सम्पुट (डिबियाके नीचे-ऊपरके भाग) बताया गया है॥ ७॥

सगुन ध्यान रुचि सरस नहिं निर्गुन मन ते दूरि ।
तुलसी सुमिरहु रामको नाम सजीवन मूरि ॥८॥

भावार्थ—सगुणरूपके ध्यानमे तो प्रीतियुक्त रुचि नही है और निर्गुणस्वरूप मनसे दूर है (यानी समझमें नही आता)। तुलसीदासजी कहते है कि ऐसी दशामे रामनाम-स्मरणरूपी संजीवनी बूटीका सदा सेवन करो॥ ८॥

एकु छत्रु एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ ।
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ ॥९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं—देखो, श्रीरघुनाथजीके नाम

(राम) के दोनों अक्षरोंमे एक 'र' तो (रेफ ' के रूपमे) सब वर्णोंके मस्तकपर छत्रकी भाँति विराजता है और दूसरा 'म' (अनुस्वार के रूपमें) सबके ऊपर मुकुट-मणिके समान सुशोभित होता है ॥९॥

नाम रामको अंक है सब साधन हैं सून ।
अंक गएँ कछु हाथ नहिं अंक रहें दस गून ॥१०॥

भावार्थ—श्रीरामजीका नाम अङ्क है और सब साधन शून्य (०) है। अङ्क न रहनेपर तो कुछ भी हाथ नही लगता, परंतु शून्यके पहले अङ्क आनेपर वे दसगुने हो जाते है (अर्थात् रामनामके जपके साथ जो साधन होते हैं, वे दसगुने लाभदायक हो जाते है), परंतु रामनामसे हीन जो साधन होता है वह कुछ भी फल नही देता ॥ १० ॥

नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु ।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु ॥११॥

भावार्थ—कलियुगमे श्रीरामजीका नाम कल्पवृक्ष (मनचाहा पदार्थ देनेवाला) है और कल्याणका निवास (मुक्तिका घर) है, जिसको स्मरण करनेसे तुलसीदास भाँगसे (विषयमदसे भरी और दूसरोंको भी विषयमद उपजानेवाली साधुओंद्वारा त्याज्य स्थितिसे) बदलकर तुलसीके समान (निर्दोष, भगवानका प्यारा, सबका आदरणीय और जगत्को पावन करनेवाला) हो गया ॥ ११ ॥

राम नाम जपि जीहँ जन भए सुकृत सुखसालि ।
तुलसी इहाँ जो आलसी गयो आजु की कालि ॥१२॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि जीभसे रामनामका जप करके लोग पुण्यात्मा और परम सुखी हो गये; परंतु इस नाम-जपमें जो आलस्य करते है, उन्हे तो आज या कल नष्ट ही हुआ

समझो ॥ १२ ॥

नाम गरीबनिवाज को राज देत जन जानि ।
तुलसी मन परिहरत नहिं घुरविनिआ की बानि ॥१३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि गरीवनिवाज (दीनवन्धु) श्रीरामजीका नाम ऐसा है, जो जपनेवालेको भगवान्‌का निज जन जानकर राज्य (प्रजापतिका पद या मोक्ष-साम्राज्यतक) दे डालता हैं। परतु यह मन ऐसा अविश्वासी और नीच है कि घूरे (कूड़ेके ढेर) मे पड़े दाने चुगनेकी ओछी आदत नही छोड़ता (अर्थात् गदे विपयोमें ही सुख खोजता है) ॥ १३ ॥

कासीं बिधि बसि तनु तजें हठि तनु तजें प्रयाग ।
तुलसी जो फल सो सुलभ राम नाम अनुराग ॥१४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि काशीजीमे (पापोसे वचते हुए) विधिवत् निवास करके शरीर त्यागनेपर और तीर्थराज प्रयागमे हठसे शरीर छोड़नेपर जो (मोक्षरूपी) फल मिलता है, वह रामनाममे अनुराग होनेसे सुगमतासे मिल जाता है। [यही नही; अनुरागपूर्वक रामनामके जापसे तो मोक्षके आधार साक्षात् भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है] ॥ १४ ॥

मीठो अरु कठवति भरो रौंताई अरु छेम ।
स्वारथ परमारथ सुलभ राम नाम के प्रेम ॥१५॥

भावार्थ—(१) मीठा पदार्थ (अमृत) भी हो और कठौता भरकर मिले, (२) राज्यादि अधिकार भी प्राप्त हों और क्षेमकुशल भी रहे (अर्थात् अभिमान और भोगोसे वचकर रहा जाय) और (३) स्वार्थ भी सधे तथा परमार्थ भी सम्पन्न हो—ऐसा होना बहुत ही कठिन है; परंतु श्रीरामनामके प्रेमसे ये परस्परविरोधी

दुर्लभ वाते भी सुलभ हो जाती है (अर्थात् रामनाममें प्रेम होनेसे मधुर सुख भी मिलते हैं और वे दु:खरहित भरपूर होते हैं; राज्य भी मिल सकता है और उसमें अभिमान तथा विषयासक्तिका अभाव होनेके कारण गिरनेकी भी गुजाइश नही रहती, पारमार्थिक स्थितिपर अचल रहते हुए भी राज्य-शासन किया जा सकता है और परमार्थ ही स्वार्थ वन जाता है) ॥ १५ ॥

राम नाम सुमिरत सुजस भाजन भए कुजाति ।
कुतरुक सुरपुर राजमग लहत भुवन बिख्याति ॥१६॥

भावार्थ—रामनामका स्मरण करनेसे (गणिका एवं अजामिल आदि) नीच जाति या नीच स्वभाववाले भी सुन्दर कीर्तिके पात्र हो गये। स्वर्गके राजमार्ग (गङ्गाजीके तट) पर स्थित बुरे वृक्ष भी त्रिभुवनमे ख्याति पा जाते है ॥ १६ ॥

स्वारथ सुख सपनेहुँ अगम परमारथ न प्रबेस ।
राम नाम सुमिरत मिटहिं तुलसी कठिन कलेस ॥१७॥

भावार्थ—जिन लोगोको सासारिक सुख सपनेमे भी नही मिलते और परमार्थमे—मोक्षप्राप्तिके मार्गमें जिनका प्रवेश नहीं है, तुलसीदासजी कहते है कि श्रीरामनामका स्मरण करनेसे उनके भी कठिन क्लेश मिट जाते है (अर्थात् उनके स्वार्थ-परमार्थ दोनोंकी सिद्धि सहजहीमें हो जाती है) ॥ १७ ॥

मोर मोर सब कहँ कहसि तू को कहु निज नाम ।
कै चुप साधहि सुनि समुझि कै तुलसी जपु राम ॥१८॥

भावार्थ—तू सवको मेरा-मेरा कहता है, परतु यह तो वता कि तू कौन है ? और तेरा अपना नाम क्या है ? तुलसीदासजी कहते हैं कि अव या तो तू इसको (नाम और रूपके रहस्यको) सुन और

समझकर मौन हो जा (मेरा-मेरा कहना छोड़कर अपने स्वरूपमें स्थित हो जा) या श्रीरामजीका नाम जप ॥ १८ ॥

हम लखि लखहि हमार लखि हम हमार के बीच ।
तुलसी अलखहि का लखहि राम नाम जप नीच ॥१९॥

भावार्थ—[एक साधनहीन 'अलखिया' साधु केवल 'अलख-अलख' चिल्लाया करता था, उसे फटकारते हुए तुलसीदासजी कहते है कि] तू पहले अपने स्वरूपको जान, फिर अपने यथार्थ 'अपने' ब्रह्मके स्वरूपका अनुभव कर। तदनन्तर अपने और ब्रह्मके बीचमे रहनेवाली मायाको पहचान। अरे नीच ! [इन तीनोको समझे बिना] तू उस अलख परमात्माको क्या समझ सकता है ? अतः ['अलख-अलख' चिल्लाना छोडकर] रामनामका जप कर ॥ १९ ॥

राम नाम अवलंब बिनु परमारथ की आस ।
बरषत बारिद बूँद गहि चाहत चढ़न अकास ॥२०॥

भावार्थ—जो रामनामका सहारा लिये बिना ही परमार्थकी—मोक्षकी आशा करता है, वह तो मानो बरसते हुए बादलकी बूंदको पकड़कर आकाशमे चढना चाहता है (अर्थात् जैसे वर्षाकी बूंदको पकड़कर आकाशपर चढ़ना असम्भव है, वैसे ही रामनामका जप किये बिना परमार्थकी प्राप्ति असम्भव है) ॥ २० ॥

तुलसी हठि हठि कहत नित चित सुनि हित करि मानि ।
लाभ राम सुमिरन बड़ो बड़ी बिसारें हानि ॥२१॥

भावार्थ—तुलसीदासजी नित्य-निरन्तर बड़े आग्रहके साथ कहते है कि हे चित्त ! तू मेरी बात सुनकर उसे हितकारी समझ। रामका स्मरण ही बड़ा भारी लाभ है और उसे भुलानेमें ही सबसे बड़ी हानि है ॥ २१ ॥

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु ।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु ॥२२॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि तू कुसङ्गतिको और चित्तके सारे बुरे विचारोको त्यागकर रामका बन जा और उनके नामका जप कर। ऐसा करनेसे तेरी अनेको जन्मोंकी बिगड़ी हुई स्थिति आज अभी सुधर जा सकती है ॥ २२ ॥

प्रीति प्रतीति सुरीति सों राम राम जपु राम ।
तुलसी तेरो है भलो आदि मध्य परिनाम ॥२३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि तुम प्रेम, विश्वास और विधिके साथ (नामापराधोंसे बचते हुए) राम-राम-राम जपो; इससे तुम्हारा आदि, मध्य और अन्त तीनों ही कालोमें कल्याण है ॥ २३ ॥

दंपति रस रसना दसन परिजन बदन सुगेह ।
तुलसी हर हित बरन सिसु संपति सहज सनेह ॥२४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि रस (रामनामका उच्चारण करते समय जिस मिठासका अनुभव होता है) और रसना (जीभ) पति-पत्नी है, दाँत कुटुम्वी हैं, मुख सुन्दर घर है, श्रीमहादेवजीके प्यारे 'र' और 'म'—ये दोनों अक्षर दो मनोहर बालक हैं और सहज स्नेह ही सम्पत्ति हैं (परमार्थ-साधककी ऐसी ही गृहस्थी होनी चाहिये) ॥ २४ ॥

बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास ।
रामनाम बर बरन जुग सावन भादव मास ॥२५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि श्रीरघुनाथजीकी भक्ति वर्षा-ऋतु है, उत्तम सेवकगण (प्रेमी भक्त) धान हैं और रामनामके दो सुन्दर अक्षर ('र' और 'म') सावन-भादोंके महीने है (अर्थात्

जैसे वर्षा-ऋतुके श्रावण, भाद्रपद—इन दो महीनोमें धान लहलहा उठता है, वैसे ही भक्तिपूर्वक श्रीरामनामका जप करनेसे भक्तोंको आत्यन्तिक सुख मिलता है) ॥ २५ ॥

राम नाम नर केसरी कनककसिपु कलिकाल ।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल ॥२६॥

भावार्थ—श्रीरामनाम नृसिंहभगवान् है, कलयुग हिरण्यकशिपु है और श्रीरामनामका जप करनेवाले भक्तजन प्रह्लादजीके समान हैं जिनकी वह (रामनामरूपी नृसिंहभगवान्) देवताओंको दु:ख देनेवाले हिरण्यकशिपुको (भक्तिके बाधक कलियुगको) मारकर रक्षा करेगा ॥ २६ ॥

राम नाम कलि कामतरु राम भगति सुरधेनु ।
सकल सुमंगल मूल जग गुरुपद पंकज रेनु ॥२७॥

भावार्थ—कलियुग में रामनाम मनचाहा फल देनेवाले कल्पवृक्षके समान है, रामभक्ति मुँहमाँगी वस्तु देनेवाली कामधेनु है और श्रीसद्‌गुरुके चरणकमलकी रज ससारमें सब प्रकारके मङ्गलोकी जड़ है ॥ २७ ॥

राम नाम कलि कामतरु सकल सुमंगल कंद ।
सुमिरत करतल सिद्धि सब पग पग परमानंद ॥२८॥

भावार्थ—श्रीरामका नाम कलियुगमे कल्पवृक्षके समान है और सब प्रकारके श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ मङ्गलोका परम सार है। रामनामके स्मरणसे ही सब सिद्धियाँ वैसे ही प्राप्त हो जाती हैं, जैसे कोई चीज हथेलीमें ही रक्खी हो और पद-पदपर परम आनन्दकी प्राप्ति होती है ॥ २८ ॥

जथा भूमि सब बीजमय नखत निवास अकास ।
राम नाम सब धरममय जानत तुलसीदास ॥२९॥

भावार्थ—जैसे सारी धरती बीजमय है, सारा आकाश नक्षत्रोंका निवास (नक्षत्रमय) है, वैसे ही रामनाम सर्वधर्ममय है—तुलसीदास इस रहस्यको जानते है ॥ २९ ॥

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन ।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन ॥३०॥

भावार्थ—जो समस्त (भोग और मोक्षकी भी) कामनाओसे रहित हैं और श्रीरामजीके भक्तिरसमे डूबे हुए हैं, उन (नारद, वसिष्ठ, वाल्मीकि, व्यास आदि) महात्माओने भी रामनामके सुन्दर प्रेमरूपी अमृत-सरोवरमे अपने मनको मछली बना रक्खा है (अर्थात् नामामृत-के आनन्दको वे क्षणभरके लिये भी त्यागनेमे मछलीकी भाँति व्याकुल हो जाते हैं) ॥ ३० ॥

ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि ।
राम चरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि ॥३१॥

भावार्थ—[निर्गुण] ब्रह्म और [सगुण] रामसे भी रामनाम बड़ा है, वह वर देनेवाले देवताओको भी वर देनेवाला है । महान् ईश्वर श्रीशंकरजीने इस रहस्यको मनमें समझकर ही रामचरित्रके सौ करोड़ श्लोकोमेसे [चुनकर दो अक्षरके इस] रामनामको ही ग्रहण किया ॥ ३१ ॥

सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ ॥३२॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजीने तो शबरी, [गीधराज] जटायु आदि अपने श्रेष्ठ सेवकोंको ही सुगति दी; परंतु रामनामने तो असंख्य

दुष्टोंका उद्धार कर दिया। रामनामकी यह गुणगाथा वेदोमे प्रसिद्ध है ॥ ३२ ॥

राम नाम पर नाम तें प्रीति प्रतीति भरोस ।

सो तुलसी सुमिरत सकल सगुन सुमंगल कोस ॥३३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो रामनामके परायण है और रामनामभे ही जिसका प्रेम, विश्वास और भरोसा है, वह रामनामका स्मरण करते ही समस्त सद्‌गुणों और श्रेष्ठ मङ्गलोका खजाना बन जाता है ॥ ३३ ॥

लंक बिभीषन राज कपि पति मारुति खग मीच ।

लही राम सों नाम रति चाहत तुलसी नीच ॥३४॥

भावार्थ—श्रीरामजीसे विभीषणने लङ्का पायी, सुग्रीवने राज्य प्राप्त किया, हनुमान्‌जीने सेवककी पदवी या प्रतिष्ठा पायी और पक्षी जटायुने देवदुर्लभ उत्तम मृत्यु प्राप्त की। परंतु नीच तुलसीदास तो उन प्रभु श्रीरामसे केवल रामनाममें प्रेम ही चाहता है ॥ ३४ ॥

हरन अमंगल अघ अखिल करन सकल कल्यान ।

रामनाम नित कहत हर गावत बेद पुरान ॥३५॥

भावार्थ—रामनाम सव अमङ्गलो और पापोको हरनेवाला तथा सब कल्याणोका करनेवाला है। इसीसे श्रीमहादेवजी सर्वदा श्रीरामनामको रटते रहते हैं और वेद-पुराण भी इस नामका ही गुण गाते हैं ॥ ३५ ॥

तुलसी प्रीति प्रतीति सों राम नाम जप जाग ।

किएँ होइ बिधि दाहिनो देइ अभागेहि भाग ॥३६॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रेम और विश्वासके साथ राम-नाम-जपरूपी यज्ञ करनेसे विधाता अनुकूल हो जाता है और

अभागे मनुष्यको भी परम भाग्यवान् वना देता है॥ ३६ ॥

जल थल नभ गति अमित अति अग जग जीव अनेक ।
तुलसी तो से दीन कहँ राम नाम गति एक ॥३७॥

भावार्थ—जगत्में चर-अचर अनेक प्रकारके असंख्य जीव हैं और चरोमे कुछ ऐसे है जिनकी जलमे गति है; कुछकी पृथ्वीपर गति है और कुछकी आकाशमे गति है; परंतु हे तुलसीदास! तुझ-सरीखे दीनके लिये तो रामनाम ही एकमात्र गति है॥ ३७ ॥

राम भरोसो राम बल राम नाम बिस्वास ।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल माँगत तुलसीदास ॥३८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी यही माँगते हैं कि मेरा एकमात्र रामपर ही भरोसा रहे, रामहीका बल रहे और जिसके स्मरणमात्रहीसे शुभ, मङ्गल और कुशलकी प्राप्ति होती है, उस रामनाममें ही विश्वास रहे ॥ ३८ ॥

राम नाम रति राम गति राम नाम बिस्वास ।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल दुहुँ दिसि तुलसीदास ॥३९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है—जिसका रामनाममें प्रेम है, राम ही जिसकी एकमात्र गति है और रामनाममें ही जिसका विश्वास है, उसके लिये रामनामका स्मरण करनेसे ही दोनों ओर (इस लोकमें और परलोकमें) शुभ, मङ्गल और कुशल है॥ ३९ ॥

रामप्रेमके बिना सब व्यर्थ है

रसना साँपिनि बदन बिल जे न जपहिं हरिनाम ।
तुलसी प्रेम न राम सों ताहि बिधाता बाम ॥४०॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो श्रीहरिका नाम नहीं

जपते, उनकी जीभ सर्पिणीके समान केवल विषय-चर्चारूपी विष उगलनेवाली और मुख उसके बिलके समान है। जिसका राममें प्रेम नही है, उसके लिए तो विधाता वाम ही है (अर्थात् उसका भाग्य फूटा ही है) ॥ ४० ॥

हिय फाटहुँ फूटहुँ नयन जरउ सो तन केहि काम ।
द्रवहिं स्रवहिं पुलकइ नहीं तुलसी सुमिरत राम ॥४१॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि श्रीरामका स्मरण करके जो हृदय पिघल नही जाते वे हृदय फट जायँ, जिन आँखोसे प्रेमके आंसू नही बहते वे आँखें फूट जायँ और जिस शरीरमें रोमाञ्च नही होता वह जल जाय, (अर्थात् ऐसे निकम्मे अङ्ग किस कामके ?) ॥४१॥

रामहि सुमिरत रन भिरत देत परत गुरु पायँ ।
तुलसी जिन्हहि न पुलक तनु ते जग जीवत जायँ ॥४२॥

भावार्थ—भगवान् श्रीरामका स्मरण होनेके समय, धर्मयुद्धमें शत्रुसे भिड़नेके समय, दान देते समय और श्रीगुरुके चरणोंमें प्रणाम करते समय जिनके शरीरमे विशेष हर्षके कारण रोमाञ्च नही होता, वे जगत्मे व्यर्थ ही जीते है ॥ ४२ ॥

सोरठा

हृदय सो कुलिस समान जो न द्रवइ हरिगुन सुनत ।
कर न राम गुन गान जीह सो दादुर जीह सम ॥४३॥

भावार्थ—श्रीहरिके गुणोंको सुनकर जो हृदय द्रवित नही होता, वह हृदय वज्रके समान कठोर है और जो जीभ श्रीरामका गुणगान नही करती, वह जीभ मेढककी जीभके समान व्यर्थ ही टर-टर करनेवाली है ॥ ४३ ॥

स्रवैं न सलिल सनेहु तुलसी सुनि रघुबीर जस ।
ते नयना जनि देहु राम ! करहु बरु आँधरो ॥४४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि हे श्रीरामजी ! मुझको भले ही अंधा बना दीजिये; परंतु ऐसी आँखें मत दीजिये, जिनसे श्रीरघुनाथजीका यश सुनते ही प्रेमके आँसू न बहने लगें ॥ ४४ ॥

रहैं न जल भरि पूरि राम सुजस सुनि रावरो ।
तिन आँखिनमें धूरि भरि भरि मूठी मेलिये ॥४५॥

भावार्थ—हे श्रीरामजी ! आपका सुयश सुनते ही जो आँखें प्रेमजलसे पूरी तरह भर न जायँ उन आँखोंमें तो मुट्ठियाँ भर-भरकर धूल झोंकनी चाहिये ॥ ४५ ॥

प्रार्थना

बारक सुमिरत तोहि होहि तिन्हहि सम्मुख सुखद ।
क्यों न सँभारहि मोहि दया सिंधु दसरत्थ के ? ॥४६॥

भावार्थ—हे दयासागर दशरथनन्दन ! जो एक वार भी तुम्हारा स्मरण करते हैं, तुम उनके सम्मुख होकर उन्हें सुख देनेवाले बन जाते हो; फिर मेरी सुधि तुम क्यों नही लेते ? ॥ ४६ ॥

रामकी और रामप्रेमकी महिमा

साहिब होत सरोष सेवक को अपराध सुनि ।
अपने देखे दोष सपनेहु राम न उर धरे ॥४७॥

भावार्थ—दूसरे मालिक तो सेवकका अपराध सुनकर ही क्रोधित हो जाते हैं (यह भी जाँच नही करते कि वास्तवमें उसने कोई अपराध किया है या नही), परतु श्रीरामचन्द्रजीने सेवकके अपराधोंको स्वयं अपनी आँखोसे देख लेनेपर भी स्वप्नमें भी कभी उनपर

ध्यान नहीं दिया [अथवा श्रीरामचन्द्रजीने अपने ही दोषोंको देखा, अपने सेवकके अपराधोंको सपनेमें भी हृदयमें स्थान नहीं दिया] ॥ ४७ ॥

दोहा

तुलसी रामहि आपु तें सेवक की रुचि मीठि ।
सीतापति से साहिबहि कैसे दीजै पीठि ॥४८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजीको अपनी रुचिकी अपेक्षा सेवककी रुचि अधिक मधुर लगती है (वे अपनी रुचि छोड़ देते हैं, परंतु सेवककी रुचि रखते है), ऐसे श्रीसीतापतिके समान स्वामीसे क्योंकर विमुख हुआ जाय ? ॥ ४८ ॥

तुलसी जाके होयगी अंतर बाहिर दीठि ।
सो कि कृपालुहि देइगो केवटपालहि पीठि ॥४९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसके भीतरी और बाहरी दृष्टि होगी अर्थात् जो लोक-लीला और परम तत्त्व दोनोंको समझता होगा, वह क्या केवटकी रुचिकी रक्षा करनेवाले (चरण पखरवाकर उसे कुलसहित तारनेवाले) कृपालु श्रीरामजीके कभी विमुख होगा ? ॥ ४९ ॥

प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान ।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान ॥५०॥

भावार्थ—वानरोंके स्वामी श्रीरामजी तो पेड़ के नीचे विराजते थे और सेवक होनेपर भी वानर पेड़की डालियोंपर बैठते थे, तो भी (इस अशिष्टतापर कोई ध्यान न देकर) प्रभुने उनको अपने ही समान बना लिया । तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामजीके समान शीलके भण्डार स्वामी और कहीं भी नहीं हैं ॥ ५० ॥

उद्बोधन

रे मन सब सों निरस ह्वै सरस राम सों होहि ।
भलो सिखावन देत है निसि दिन तुलसी तोहि ॥५१॥

भावार्थ—रे मन ! तू संसारके सब पदार्थोंसे प्रीति तोड़कर श्रीरामसे प्रेमकर । तुलसीदास तुझको रात-दिन यही सत् शिक्षा देता है ॥ ५१ ॥

हरे चरहिं तापहिं बरे फरें पसारहिं हाथ ।
तुलसी स्वारथ मीत सब परमारथ रघुनाथ ॥५२॥

भावार्थ—वृक्ष जब हरे होते हैं, तब पशु-पक्षी उन्हें चरने लगते हैं, सूख जानेपर लोग उन्हें जलाकर तापते हैं और फलनेपर फल पानेके लिये लोग हाथ पसारने लगते हैं (अर्थात् जहाँ हरा-भरा घर देखते हैं, वहाँ लोग खानेके लिये दौड़े जाते हैं, जहाँ बिगड़ी हालत होती है, वहाँ उसे और भी जलाकर सुखी होते है और जहाँ सम्पत्तिसे फला-फूला देखते हैं, वहाँ हाथ पसारकर माँगने लगते हैं)। तुलसीदास-जी कहते है कि इस प्रकार जगत्में तो सब स्वार्थके ही मित्र हैं। परमार्थके मित्र तो एकमात्र श्रीरघुनाथजी ही हैं (जो सब समय ही प्रेम करते हैं और दीन स्थितिमें तो विशेष प्रेम करते है) ॥ ५२ ॥

स्वारथ सीता राम सों परमारथ सिय राम ।
तुलसी तेरो दूसरे द्वार कहा कहु काम ॥५३॥

भावार्थ—श्रीसीतारामसे ही तेरे सब स्वार्थ सिद्ध हो जायँगे और श्रीसीताराम ही तेरे परमार्थ (परम ध्येय) हैं; तुलसीदासजी कहते हैं कि फिर बतला तेरा दूसरेके दरवाजेपर क्या काम है ? ॥ ५३ ॥

स्वारथ परमारथ सकल सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर ॥५४॥

भावार्थ—जब एक श्रीरामचन्द्रजीकी ओरसे ही सब स्वार्थ और परमार्थ सुलभ हैं तब हे तुलसी! तुझे दूसरे के दरवाजेपर दीनता दिखलाना उचित नहीं है॥ ५४॥

तुलसी स्वारथ राम हित परमारथ रघुवीर।
सेवक जाके लखन से पवनपूत रनधीर ॥५५॥

भावार्थ—तुलसीदासका तो स्वार्थ भी रामके लिये है और परमार्थ भी वे श्रीरघुनाथजी ही हैं, जिनके श्रीलक्ष्मणजी और रणधीर श्रीहनुमान्‌जी-जैसे सेवक हैं॥ ५५॥

ज्यों जग बैरी मीन को आपु सहित बिनु बारि।
त्यों तुलसी रघुबीर बिनु गति आपनी बिचारि ॥५६॥

भावार्थ—जैसे जलको छोड़कर सारा जगत् ही मछलीका वैरी है, यहाँतक कि वह आप भी वैरीका काम करती है (जीभके स्वादके लिये काँटेमें अपना मुँह फँसा लेती है), वैसे ही हे तुलसीदास! एक श्रीरघुनाथजीके विना अपनी भी यही गति समझ ले (अपना ही मन वैरी बनकर तुझे विषयोमें फँसा देगा)॥ ५६॥

तुलसीदासजीकी अभिलाषा

राम प्रेम बिनु दूबरो राम प्रेमहीं पीन।
रघुबर कबहुँक करहुगे तुलसिहि ज्यों जल मीन ॥५७॥

भावार्थ—जैसे मछली जलके रहनेसे—जलके संयोगसे पुष्ट होती है और जलके विना दुवली हो जाती है, जलके वियोगमे मर जाती है, वैसे ही हे श्रीरघुनाथजी! आप इस तुलसीदासको कब ऐसा

करेंगे जब वह श्रीराम (आप) के प्रेमके बिना मछलीकी भाँति दुबला जाय और श्रीराम (आप) के प्रेमसे ही पुष्ट हो ? ॥५७॥

रामप्रेमकी महत्ता

राम सनेही राम गति राम चरन रति जाहि ।
तुलसी फल जग जनमको दियो बिधाता ताहि ॥५८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं—जो श्रीरामका ही प्रेमी है, श्रीराम ही जिसकी गति है और श्रीरामके ही चरणोमे जिसकी प्रीति है; बस, उसीको विधाताने जगत्‌मे जन्म लेनेका यथार्थ फल दिया है ॥ ५८ ॥

आपु आपने तें अधिक जेहि प्रिय सीताराम ।
तेहि के पगकी पानहीं तुलसी तनु को चाम ॥५९॥

भावार्थ—अपनी और अपने सम्बन्धी समस्त पदार्थोंकी अपेक्षा जिसे श्रीसीतारामजी अधिक प्रिय हैं, तुलसीदासके शरीरका चमड़ा ऐसे प्रेमी भक्तके चरणोंकी जूतियोमे लगे तो उसका सौभाग्य है ॥ ५९ ॥

स्वारथ परमारथ रहित सीता राम सनेहँ ।
तुलसी सो फल चारि को फल हमार मत एहँ ॥६०॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि स्वार्थ (भोग) और परमार्थ (मोक्ष) की इच्छासे रहित जो श्रीसीतारामके प्रति निष्काम और अनन्य प्रेम है, वह अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—चारों फलोंका भी महान् फल है—यह मेरा मत है ॥ ६० ॥

जे जन रूखे बिषय रस चिकने राम सनेहँ ।
तुलसी ते प्रिय रामको कानन बसहिं कि गेहँ ॥६१॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो विषय-रससे विरक्त हैं और रामप्रेमके रसिक हैं, वे ही श्रीरामजीके प्यारे हैं—फिर चाहे वे वनमे रहें या घरमें (विरक्त हो या गृहस्थ) ॥ ६१ ॥

जथा लाभ संतोष सुख रघुवर चरन सनेह।
तुलसी जो मन खूँद सम कानन बसहुँ कि गेह ॥६२॥

भावार्थ—जो कुछ मिल जाय उसीमें जिनका मन सन्तुष्ट और सुखी रहता है और जिसमें श्रीरघुनाथजीके चरणोका प्रेम भरा है—जिनका मन ऐसा खूंद-सा* बन गया है, तुलसीदासजी कहते हैं कि वे वनमे रहें या घरमे—उनके लिये दोनो एक-से हैं ॥ ६२ ॥

तुलसी जौं पै राम सों नाहिन सहज सनेह।
मूँड़ मुड़ायो बादिहीं भाँड़ भयो तजि गेह ॥६३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि यदि श्रीरामचन्द्रजीसे स्वाभाविक प्रेम नही है तो फिर वृथा ही मूंड मुंड़ाया—साधु हुए और घर छोडकर भाँड़ वने (वैराग्यका स्वाँग भरा) ॥६३॥

रामविमुखताका कुफल

तुलसी श्रीरघुबीर तजि करै भरोसो और।
सुख संपति की का चली नरकहुँ नाहीं ठौर ॥६४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो मनुष्य श्रीरघुनाथजीको छोड़कर दूसरा कोई भरोसा करता है—सुख-सम्पत्तिकी तो वात ही दूर है, उसे नरकमे भी जगह नही मिलेगी ॥ ॥६४॥

---

*घोडा पिछले पैर वंधे रहनेके कारण एक ही स्थानपर खड़ा हुआ टाप चलाता रहता है, परंतु स्थान नही छोडता, उस स्थितिको खूंद कहते हैं। इसी प्रकार सव कुछ करते हुए भी जिनका मन श्रीरामप्रेममे अचल रहता है, उन्हींके सम्वन्धमे यह बात कही गयी है।

तुलसी परिहरि हरि हरहि पाँवर पूजहिं भूत ।
अंत फजीहत होहिंगे गनिका के से पूत ॥६५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीहरि (भगवान् विष्णु) और श्रीशंकरजीको छोड़कर जो पामर भूतोकी पूजा करते हैं, वेश्याके पुत्रोंकी तरह उनकी अन्तमें वडी दुर्दशा होगी ॥६५॥

सेये सीता राम नहिं भजे न संकर गौरि ।
जनम गँवायो बादिहीं परत पराई पौरि ॥६६॥

भावार्थ—यदि श्रीसीतारामजीकी सेवा नही की और श्रीगौरीशंकरका भजन नही किया तो पराये दरवाजेपर पड़े रहकर वृथा ही जन्म गँवाया ॥६६॥

तुलसी हरि अपमान तें होइ अकाज समाज ।
राज करत रज मिलि गए सदल सकुल कुरुराज ॥६७॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि श्रीहरिका अपमान करनेसे हानियोंका समाज जुट जाता है अर्थात् हानि-ही-हानि होती है। [सन्धि करानेके लिये कौरवोंकी राजसभामें दूत वनकर गये हुए] भगवान् श्रीकृष्णका अपमान करनेसे राज्य करते हुए कुरुराज दुर्योधन अपनी सेना और कुटुम्वके सहित धूलमें मिल गये (नष्ट हो गये) ॥ ६७ ॥

तुलसी रामहि परिहरें निपट हानि सुन ओझ ।
सुरसरि गत सोई सलिल सुरा सरिस गंगोझ ॥६८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि अरे पण्डित! सुनो, श्रीरामजीको छोड़ देनेसे अत्यन्त हानि होती है। श्रीगङ्गाजीका वही जल श्रीगङ्गाजीसे अलग हो जानेपर मदिराके समान हो जाता

है* [इसी प्रकार श्रीरामसे विमुख होकर विषयोंका सङ्ग करनेसे परमात्माका अंश जीव अपवित्र होकर नरकगामी हो जाता है] ॥ ६८ ॥

राम दूरि माया बढ़ति घटति जानि मन माँह ।
भूरि होति रबि दूरि लखि सिर पर पगतर छाँह ॥६९॥

भावार्थ—जैसे सूर्यको दूर देखकर छाया लम्बी हो जाती है और सूर्य जब सिरपर आ जाता है तब वह ठीक पैरोंके नीचे आ जाती है, उसी प्रकार श्रीरामजीसे दूर रहनेपर माया बढ़ती है और जब वह श्रीरामजीको मनमें विराजित जानती है, तब घट जाती है ॥ ६९ ॥

साहिब सीतानाथ सों जब घटिहै अनुराग ।
तुलसी तबहीं भालतें भभरि भागिहैं भाग ॥७०॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं—जब स्वामी श्रीजानकीनाथजी-से प्रेम घट जायगा, तब उस आदमीके मस्तकसे सौभाग्य तुरंत ही विकल होकर भाग जायगा। (अर्थात् जो मनुष्य भगवान् श्रीरामसे विमुख हो जाता है; उसका सारा सुख-सौभाग्य नष्ट हो जाता है) ॥ ७० ॥

करिहौ कोसलनाथ तजि जबहिं दूसरी आस ।
जहाँ तहाँ दुख पाइहौ तबहीं तुलसीदास ॥७१॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि कोसलपति श्रीरामजीको छोड़कर जभी दूसरी आशा करोगे तभी जहाँ-तहाँ दुःख ही पाओगे ॥ ७१ ॥

*शास्त्रका भी वचन है—

गङ्गाया निःसृतं तोयं पुनर्गङ्गां न गच्छति ।
तत्तोयं मदिरातुल्यं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

बिंधि न इंधन पाइऐ सायर जुरै न नीर।
परै उपास कुबेर घर जो बिपच्छ रघुबीर ॥७२॥

भावार्थ—यदि श्रीरघुनाथजी प्रतिकूल हो जायँ तो फिर (घनी लकड़ियोंवाले) विन्ध्याचलमे इंधन नही मिलेगा, समुद्रमे जल नही जुड़ सकेगा और धनपति कुबेरके घर भी फाका पड़ जायगा ॥७२॥

बरषा को गोबर भयो को चहै को करै प्रीति।
तुलसी तू अनुभवहि अब राम बिमुख की रीति ॥७३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि तू अब श्रीरामजीसे विमुख मनुष्यकी गतिका तो अनुभव कर, वह बरसातका गोवर हो जाता है [जो न तो लीपनेके काममे आता है न पाथनेके] अर्थात् निकम्मा हो जाता है। उसे कौन चाहेगा ? और कौन उससे प्रेम करेगा ? ॥७३॥

सबहि समरथहि सुखद प्रिय अच्छम प्रिय हितकारि।
कबहुँ न काहुहि राम प्रिय तुलसी कहा बिचारि ॥७४॥

भावार्थ—[ससारकी यह दशा है कि] जो समर्थ पुरुष है उन सबको तो [सासारिक] सुख देनेवाला प्रिय लगता है और असमर्थको अपना [सांसारिक] भला करनेवाला प्रिय होता है। तुलसीदासजी विचारकर ऐसा कहते है कि भगवान् श्रीराम [विषयी पुरुषोमें] कभी किसीको भी प्रिय नही लगते ॥७४॥

तुलसी उद्यम करम जुग जब जेहि राम सुडीठि।
होइ सुफल सोइ ताहि सब सनमुख प्रभु तन पीठि ॥७५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है—जब जिसपर श्रीरामजीकी सुदृष्टि होती है, तब उसके सब उद्यम (क्रियमाण) और कर्म (प्रारब्ध) दोनो सफल हो जाते है और वह शरीरकी ममता छोड़कर

प्रभुके सम्मुख हो जाता है ॥ ७५ ॥

राम कामतरु परिहरत सेवत कलि तरु ठूँठ ।
स्वारथ परमारथ चहत सकल मनोरथ झूँठ ॥७६॥

भावार्थ—जो मनुष्य श्रीरामरूपी कल्पवृक्षको छोड़कर सूखे ठूँठ-जैसे [नि सार] कलियुग अर्थात् पापरूपी वृक्षका सेवन करते हैं और उससे स्वार्थ और परमार्थरूपी फल चाहते हैं, उनके सभी मनोरथ व्यर्थ होते है (अर्थात् स्वार्थ, परमार्थ कुछ भी सिद्ध नही होता) ॥ ७६ ॥

कल्याणका सुगम उपाय

निज दूषन गुन राम के समुझें तुलसीदास ।
होइ भलो कलिकालहूँ उभय लोक अनयास ॥७७॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है—अपने दोषो (अपराधो) तथा श्रीरामके [क्षमा, दया आदि] गुणोको समझ लेनेपर अथवा दोषोंको अपना किया और गुण भगवान् श्रीरामके दिये हुए मान लेनेसे इस कलिकालमे भी मनुष्यका इस लोक और परलोक दोनोमे सहज ही कल्याण हो जाता है ॥ ७७ ॥

कै तोहि लागहिं राम प्रिय कै तू प्रभु प्रिय होहि ।
दुइ में रुचै जो सुगम सो कीबे तुलसी तोहि ॥७८॥

भावार्थ—या तो तुझे राम प्रिय लगने लगे या प्रभु श्रीरामका तू प्रिय बन जा । दोनोमेसे जो तुझे सुगम जान पडे तथा प्रिय लगे, तुलसीदासजी कहते है कि तुझे वही करना चाहिये । (अर्थात् या तो सबसे प्रेम छोडकर श्रीरामको ही अपना एकमात्र प्रियतम मान ले या प्रभुकी शरण होकर सब कुछ उन्हे समर्पण कर दे, जिससे वे तुझे अपना अत्यन्त प्रिय मान लें) ॥ ७८ ॥

तुलसी दुइ महँ एक ही खेल छाँड़ि छल खेलु ।
कै करु ममता राम सों कै ममता परहेलु ॥७९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि सब छोड़कर तू दोनोंमेसे एक ही खेल—या तो केवल रामसे ही ममता कर या ममताका सर्वथा त्याग कर दे ॥ ७९ ॥

श्रीरामजीकी प्राप्तिका सुगम उपाय

निगम अगम साहेब सुगम राम साँचिली चाह ।
अंबु असन अवलोकिअत सुलभ सबै जग माँह ॥८०॥

भावार्थ—जो हमारे स्वामी वेदोंके लिये भी अगम हैं, (वेद भी जिनको 'नेति-नेति' कहते है) वे ही श्रीराम सच्ची चाहसे ऐसे सुगम हो जाते हैं जैसे जल और अन्न जगत्‌में सबके लिये सुलभ देखे जाते है ॥ ८० ॥

सनमुख आवत पथिक ज्यों दिएँ दाहिनो बाम ।
तैसोइ होत सु आप को त्यों ही तुलसी राम ॥८१॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि सामने आते हुए पथिकको आप दायें-बायें जिस ओर देकर चलेंगे उसी प्रकार वह भी आपके दायें-बायें हो जायगा । ऐसे ही श्रीरामको भी जो जिस प्रकार भजता है श्रीराम भी उसे उसी प्रकार भजते हैं* ॥ ८१ ॥

रामप्रेमके लिये वैराग्यकी आवश्यकता

राम प्रेम पथ देखिऐ दिएँ बिषय तन पीठि ।
तुलसी केंचुरि परिहरें होत साँपहू दीठि ॥८२॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि विषयोंकी ओर पीठ देनेसे

* ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् । (गीता ४ । ११)

ही (विषयोंमें वैराग्य होनेसे ही) श्रीरामजीके प्रेमका पथ दिखलायी पड़ता है। साँपको भी केंचुल छोड़ देनेपर ही दिखलायी देने लगता है ॥ ८२ ॥

तुलसी जौं लौं विषय की मुधा माधुरी मीठि ।
तौं लौं सुधा सहस्र सम राम भगति सुठि सीठि ॥८३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जबतक विषयोंकी मिथ्या माधुरी मीठी लगती है, तबतक हजार अमृतके समान मधुर होनेपर भी रामभक्ति बिल्कुल फीकी प्रतीत होती है ॥ ८३ ॥

शरणागतिकी सहिमा

जैसो तैसो रावरो केवल कोसलपाल ।
तौ तुलसीको है भलो तिहूँ लोक तिहुँ काल ॥८४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि हे कोसलपति श्रीरामजी ! जैसा-तैसा (भला-बुरा) यह तुलसीदास केवल आपका ही है। यदि यह बात सच है तो तीनों लोकोंमें (यह जहाँ-कहीं रहे) और तीनों कालों (भूत, भविष्य और वर्तमान) मे इसका कल्याण-ही-कल्याण है ॥ ८४ ॥

है तुलसी कें एक गुन अवगुन निधि कहैं लोग ।
भलो भरोसो रावरो राम रीझिबे जोग ॥८५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि लोग मुझको अवगुणोंका भण्डार कहते हैं, परंतु मुझमे एक गुण यह है कि मुझको आपका पूरा भरोसा है; इसीसे हे रामजी ! आपको मुझपर रीझ जाना योग्य है ॥ ८५ ॥

भक्तिका स्वरूप

प्रीति रामसों नीति पथ चलिय राग रिस जीति।
तुलसी संतन के मते इहै भगति की रीति ॥८६॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि श्रीरामजीसे प्रेम करना और राग (आसक्ति या काम) एवं क्रोधको जीतकर नीतिके मार्ग-पर चलना, संतोंके मतसे भक्तिकी यही रीति है॥ ८६ ॥

कलियुगसे कौन नहीं छला जाता

सत्य बचन मानस बिमल कपट रहित करतूति।
तुलसी रघुबर सेवकहि सकै न कलिजुग धूति ॥८७॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जिनके वचन सत्य होते हैं, मन निर्मल होता है और क्रिया कपटरहित होती है, ऐसे श्रीरामजीके भक्तोको कलियुग कभी धोखा नही दे सकता (वे मायामें नही फँस सकते) ॥ ८७ ॥

तुलसी सुखी जो राम सों दुखी सो निज करतूति।
करम बचन मन ठीक जेहि तेहि न सकै कलि धूति ॥८८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो मनुष्य श्रीरामजीसे (भगवान् श्रीरामकी कृपासे ही) अपनेको सब प्रकारसे सुखी होना और (श्रीरामजीको छोड़कर) अपनी अहंकार भरी करतूतोंसे दुखी होना मानता है, जिसके कर्म, वचन और मन ठीक हैं (भगवान्‌में लगे हैं) उसको कलियुग धोखा नही दे सकता ॥ ८८ ॥

गोस्वामीजीकी प्रेम-कामना

नातो नाते राम कें राम सनेहँ सनेहु।
तुलसी माँगत जोरि कर जनम-जनम सिव देहु ॥८९॥

भावार्थ—तुलसीदास हाथ जोड़कर वरदान माँगता है कि हे शिवजी ! मुझे जन्म-जन्मान्तरोमे यही दीजिये कि मेरा श्रीरामके नाते ही किसीसे नाता हो और श्रीरामसे प्रेमके कारण ही प्रेम हो ॥ ८९ ॥

सब साधनको एक फल जेहिं जान्यो सो जान ।
ज्यों त्यों मन मंदिर बसहिं राम धरें धनु वान ॥९०॥

भावार्थ—सव साधनोंका यही एकमात्र फल है कि जिस-किसी प्रकारसे भी हो, धनुप-वाण धारण करनेवाले श्रीरामजी मन-मन्दिरमें निवास करने लगें । जिसने इस रहस्यको जान लिया, वही यथार्थ जाननेवाला है ॥ ९० ॥

जौं जगदीस तौ अति भलो जौं महीस तौ भाग ।
तुलसी चाहत जनम भरि राम चरन अनुराग ॥९१॥

भावार्थ—यदि श्रीरामजी समस्त जगत्के स्वामी है तो वहुत ही अच्छी वात है, और यदि वे केवल पृथ्वीके स्वामी–राजा हैं तो भी मेरा वड़ा भाग्य है । [राम कोई भी हो] तुलसीदास तो जन्मभर श्रीरामके चरणकमलोमे प्रेम ही चाहता है ॥ ९१ ॥

परौ नरक फल चारि सिसु मीच डाकिनी खाउ ।
तुलसी राम सनेह को जो फल सो जरि जाउ ॥९२॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है, मैं चाहे नरकमे पड़ूँ, चारों फल (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) रूपी वालकोंको चाहे मृत्युरूपी डाकिनी खा जाय, श्रीरामजीसे प्रेम करनेका और कुछ भी जो फल हो वह जल जाय [किंतु फिर भी मैं तो श्रीरामके चरणोमे प्रेम ही करता रहूँगा] ॥ ९२ ॥

रामभक्तके लक्षण

हित सों हित, रति राम सों, रिपु सों बैर बिहाउ ।
उदासीन सब सों सरल तुलसी सहज सुभाउ ॥९३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि रामभक्तका ऐसा सहज भाव होना चाहिये कि श्रीराममें उसका प्रेम हो, मित्रोसे मैत्री हो, वैरियोंसे वैरका त्याग कर दे, किसीमें पक्षपात न हो और सबसे सरलताका व्यवहार हो ॥ ९३ ॥

तुलसी ममता राम सों समता सब संसार ।
राग न रोष न दोष दुख दास भए भव पार ॥९४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जिनकी श्रीराममें ममता और सब संसारमें समता है, जिनका किसीके प्रति राग, द्वेप, दोष और दुःखका भाव नहीं है, श्रीरामके ऐसे भक्त भवसागरसे पार हो चुके हैं ॥ ९४ ॥

उद्बोधन

रामहि डरु करु राम सों ममता प्रीति प्रतीत ।
तुलसी निरुपधि राम को भएँ हारेहूँ जीति ॥९५॥

भावार्थ—श्रीरामसे डरो, श्रीराममें ही ममता, प्रेम और विश्वास करो। तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामका कपटरहित सेवक हो रहनेपर हारनेमे भी जीत ही है ॥ ९५ ॥

तुलसी राम कृपालु सों कहि सुनाउ गुन दोष ।
होय दूबरी दीनता परम पीन संतोष ॥९६॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि तुम कृपालु श्रीरामजीसे अपने सब गुण-दोष दिल खोलकर सुना दो। इससे तुम्हारी दीनता

दुवली (कम) हो जायगी और सन्तोष परम पुष्ट (दृढ) हो जायगा ॥ ९६ ॥

सुमिरन सेवा राम सों साहब सों पहिचानि ।
ऐसेहु लाभ न ललक जो तुलसी नित हित हानि ॥९७॥

भावार्थ—श्रीरामजीका स्मरण हो, श्रीरामजीकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त हो और श्रीराम-सरीखे स्वामीको तत्त्वसे पहचान लिया जाय। ऐसे परम लाभके लिये भी जो नही ललचाता, तुलसीदासजी कहते हैं कि उसके हितकी सर्वथा हानि ही है ॥९७॥

जानें जानन जोइऐ बिनु जाने को जान ।
तुलसी यह सुनि समुझि हियँ आनु धरें धनु बान ॥९८॥

भावार्थ—जाननेपर ही जानना देखा जाता है, विना जाने कौन जान सकता है ? (जव हम किसीको जानने लगते हैं, तभी क्रमशः उसका यथार्थ ज्ञान—साक्षात्कार होता है; जाननेकी चेष्टा ही न करें तो कैसे जानेंगे !) तुलसीदासजी कहते हैं कि यह वात सुनकर और समझकर धनुष-बाण धारण किये हुए श्रीरामजीको अपने हृदयमें ले आओ। (ध्यान करते-करते ही साक्षात्कार हो जायगा) ॥ ९८ ॥

करमठ कठमलिया कहैं ग्यानी ग्यान बिहीन ।
तुलसी त्रिपथ बिहाइ गो राम दुआरें दीन ॥९९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि कर्मठ (कर्मकाण्डी) लोग तो मुझे काठकी माला धारण करनेवाला 'कठमलिया' कहते हैं, ज्ञानी मुझको ज्ञानविहीन वतलाते हैं [और उपासना करना मैं जानता ही नही] मैं तो तीनों मार्गोंको छोड़, दीन होकर श्रीराम-चन्द्रजीके दरवाजेपर जा पड़ा हूँ ॥ ९९ ॥

बाधक सब सब के भए साधक भए न कोइ।
तुलसी राम कृपालु तें भलो होइ सो होइ ॥१००॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि इस जगत्‌मे तो सब लो[illegible] सबके बाधक ही होते हैं, साधक कोई किसीका नहीं है। कृपा[illegible] श्रीरामजीसे ही भला होता है सो होता है ॥ १०० ॥

शिव और रामकी एकता

संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास ॥१०१॥

भावार्थ—[भगवान् श्रीरामचन्द्रजी कहते है कि] जिनक[illegible] शिवजी प्रिय हैं, किंतु जो मुझसे विरोध रखते हैं अथवा ज[illegible] शिवजीसे विरोध रखते है और मेरे दास [बनना चाहते] है, [illegible] मनुष्य एक कल्पतक घोर नरकमें पड़े रहते हैं [अतए[illegible] श्रीशंकरजीमें और श्रीरामजीमें कोई ऊँच-नीचका भेद नही मान[illegible] चाहिए।] ॥ १०१ ॥

बिलग बिलग सुख संग दुख जनम मरन सोइ रीति।
रहिअत राखे राम के गए ते उचित अनीति ॥१०२॥

भावार्थ—संसारसे दूर-दूर (आसक्तिरहित होकर) रहनेमें ह[illegible] सुख है, आसक्तिमें ही दुःख है। यही बात जन्म और मृत्युमे भ[illegible] है। श्रीरामके रक्खे अर्थात् वे रखना चाहते है, इसीलिये (आसक्ति[illegible] रहित होकर यहाँ रहना चाहिये। अन्यथा इस अनीतिसे (रागयुक्[illegible] संसारसे) जो चले गये, उन्होने ही उचित किया (तात्पर्य यह है कि[illegible] जगत्‌में या तो भगवत्प्रेमी होकर रहे या ऐसी चेष्टा करे जिस[illegible] इससे मुक्ति ही मिल जाय) ॥ १०२ ॥

रामप्रेमकी सर्वोत्कृष्टता

जायँ कहब करतूति बिनु जायँ जोग बिन छेम ।
तुलसी जायँ उपाय सब बिना राम पद प्रेम ॥१०३॥

भावार्थ—विना करनी किये केवल कथनमात्र व्यर्थ है, विना क्षेम (प्राप्त वस्तुकी रक्षा) के योग (अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति) व्यर्थ है। तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामके चरणोमे प्रेम हुए विना सब साधन व्यर्थ हैं ॥ १०३ ॥

लोग मगन सब जोगहीं जोग जायँ बिनु छेम ।
त्यों तुलसी के भावगत राम प्रेम बिनु नेम ॥१०४॥

भावार्थ—लोग सब योगमे ही (अप्राप्त वस्तुके प्राप्त करनेके काममे ही) लगे हैं, परंतु क्षेम (प्राप्त वस्तुकी रक्षा) का उपाय किये विना योग व्यर्थ है। इसी प्रकार तुलसीदासके विचारसे श्रीरामजीके प्रेम विना सभी नियम व्यर्थ हैं ॥१०४॥

श्रीरामकी कृपा

राम निकाई रावरी है सबही को नीक ।
जौं यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक ॥१०५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि हे रामजी ! आपकी भलाई (सुहृद्‌भाव)से सभीका भला है। अर्थात् आपका कल्याणमय स्वभाव सभीका कल्याण करनेवाला है । यदि यह बात सत्य है तो तुलसी-दासका भी सदा कल्याण ही है ॥१०५॥

तुलसी राम जो आदरचो खोटो खरो खरोइ ।
दीपक काजर सिर धरचो धरचो सुधरयो धरोइ ॥१०६॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसको श्रीरामने आदर दे

दिया (अपना लिया) वह बुरा भी भला, सदा भला ही है। दीपकने जब काजलको अपने सिरपर धारण कर लिया तो फिर कर ही लिया ॥ १०६॥

तनु बिचित्र कायर बचन अहि अहार मन घोर।
तुलसी हरि भए पच्छधर ताते कह सब मोर ॥१०७॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मोरका रंग-बिरंगा विचित्र शरीर है, कायरकी-सी उसकी बोली है, साँप उसका भोजन है और कठोर मन है। इतने अवगुण होनेपर भी भगवान् श्रीकृष्णने उसकी पाँखोंको सिरपर धारण कर लिया—भगवान् उसका पक्ष रखनेवाले हो गये, तो सभी उससे प्रेम करते हुए 'मोर, मोर' (मेरा, मेरा) कहने लगे ॥१०७॥

लहइ न फूटी कौड़िहू को चाहै केहि काज।
सो तुलसी महँगो कियो राम गरीबनिवाज ॥१०८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जिसको एक फूटी कौड़ी भी नहीं मिलती थी (जिसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं थी), उसको भला कौन चाहता और किसलिये चाहता। उसी तुलसीको गरीब-निवाज श्रीरामजीने आज महँगा कर दिया (उसका गौरव बढ़ा दिया) ॥१०८॥

घर घर माँगे टूक पुनि भूपति पूजे पाय।
जे तुलसी तब राम बिनु ते अब राम सहाय ॥१०९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जिस समय मैं रामसे (श्रीरामके आश्रयसे) रहित था, उस समय घर-घर टुकड़े माँगता था। अब जो श्रीरामजी मेरे सहायक हो गये हैं तो फिर राजालोग मेरे पैर पूजते हैं ॥१०९॥

तुलसी राम सुदीठि तें निबल होत बलवान ।
बैर बालि सुग्रीव कें कहा कियो हनुमान ॥११०॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामजीकी शुभ दृष्टिसे निर्बल भी बलवान् हो जाते हैं। सुग्रीव और बालिके वैरमे हनुमान्‌जीने भला क्या किया ? [परंतु वही श्रीरामजीकी कृपासे महान् वीर हो गये] ॥११०॥

तुलसी रामहु तें अधिक राम भगत जियँ जान ।
रिनिया राजा राम भे धनिक भए हनुमान ॥१११॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामके भक्तको रामजीसे भी अधिक समझो। राजराजेश्वर श्रीरामचन्द्रजी स्वयं ऋणी हो गये और उनके भक्त श्रीहनुमान्‌जी उनके साहूकार बन गये (श्रीराम-जीने यहाँतक कह दिया कि मैं तुम्हारा ऋण कभी चुका ही नही सकता) ॥१११॥

कियो सुसेवक धरम कपि प्रभु कृतग्य जियँ जानि ।
जोरि हाथ ठाढ़े भए बरदायक बरदानि ॥११२॥

भावार्थ—श्रीहनुमान्‌जीने [अधिक कुछ नही किया, केवल] एक अच्छे सेवकका धर्म ही निभाया। परंतु यह जानकर वर देनेवाले देवताओंके भी वरदाता महेश्वर श्रीभगवान् हृदयसे ऐसे कृतज्ञ हुए कि हाथ जोड़कर हनुमान्‌जीके सामने खड़े हो गये (कहने लगे कि हे हनुमान् ! मैं तुम्हारे बदलेमे उपकार तो क्या करूँ, तुम्हारे सामने नजर उठाकर देख भी नही सकता) ॥११२॥

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप ।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ॥११३॥

भावार्थ—जगदीश्वर भगवान् श्रीरामजीने भक्तोंके लिये ही

राजाका शरीर धारण किया और साधारण मनुष्योंकी भाँति परम पवित्र लीलाएँ की ॥११३॥

ग्यान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार ।

सोइ सच्चिदानंदघन कर नर चरित उदार ॥११४॥

भावार्थ—जो ज्ञान (बुद्धि), वाणी और इन्द्रियोसे परे, अजन्मा तथा माया, मन और गुणोके पार हैं, वही सच्चिदानन्दघन भगवान श्रेष्ठ नरलीला करते है ॥११४॥

हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान ।

जेहिं मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान ॥११५॥

भावार्थ—जिन कृपासिन्धु भगवान्‌ने भाई हिरण्यकशिपुसहित हिरण्याक्षको और बलवान् मधु-कैटभको मारा था, वे ही भगवान् [श्रीरामरूपमे] अवतरित हुए है ॥११५॥

सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु ।

चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु ॥११६॥

भावार्थ—शुद्ध (प्रकृतिजन्य त्रिगुणोसे रहित, मायातीत दिव्य मङ्गलविग्रह), सच्चिदानन्दकन्दस्वरूप सूर्यकुलके ध्वजारूप भगवान् श्रीरामजी मनुष्योके समान ऐसे चरित्र करते है, जो संसार-सागरसे तारनेके लिये पुलके समान है (अर्थात् उन चरित्रोको गाकर और सुनकर लोग भवसागरसे सहज ही तर जाते हैं) ॥११६॥

भगवान्‌की बाललीला

बाल बिभूषन बसन बर धूरि धूसरित अंग ।

बालकेलि रघुबर करत बाल बंधु सब संग ॥११७॥

भावार्थ—श्रीरामजी बालोचित सुन्दर गहने-कपड़ोसे सजे हुए

हैं, उनके श्रीअङ्ग धूलसे मटमैले हो रहे हैं, सब बालकों तथा भाइयोके साथ आप बालकोके-से खेल खेल रहे हैं ॥११७॥

अनुदिन अवध बधावने नित नव मंगल मोद ।
मुदित मातु पितु लोग लखि रघुबर बाल बिनोद ॥११८॥

भावार्थ—श्रीअयोध्याजीमे रोज बधावे बजते हैं, नित नये-नये मङ्गलाचार और आनन्द मनाये जाते है । श्रीरघुनाथजीकी बाललीला देख-देखकर माता, पिता तथा सब लोग बडे प्रसन्न होते हैं ॥११८॥

राज अजिर राजत रुचिर कोसलपालक बाल ।
जानु पानि चर चरित बर सगुन सुमंगल माल ॥११९॥

भावार्थ—कोसलपति महाराज दशरथके लाडले लाल राजमहल-के सुन्दर आँगनमे हाथों और घुटनोके बल (बकैयाँ) चलते हुए ऐसी उत्तम-उत्तम लीलाएँ कर रहे है जो मानो सब शुभ गुण और सुमङ्गलोकी माला ही है ॥११९॥

नाम ललित लीला ललित ललित रूप रघुनाथ ।
ललित बसन भूषन ललित ललित अनुज सिसु साथ ॥१२०॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजीका नाम, उनकी लीला, उनका सुन्दर रूप, उनके वस्त्र, उनके आभूषण सभी अत्यन्त सुन्दर है और सुन्दर छोटे भाई तथा अयोध्यावासी बालक उनके साथ [खेल रहे] हैं ॥१२०॥

राम भरत लछिमन ललित सत्रु समन सुभ नाम ।
सुमिरत दसरथ सुवन सब पूजहिं सब मन काम ॥१२१॥

भावार्थ—श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न ऐसे जिनके सुन्दर और शुभ नाम हैं, दशरथजीके इन सब सुपुत्रोका स्मरण करते ही सारी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती है ॥१२१॥

बालक कोसलपाल के सेवकपाल कृपाल ।
तुलसी मन मानस बसत मंगल मंजु मराल ॥१२२॥

भावार्थ—कोसलपति श्रीदशरथजीके बालक श्रीरामजी सेवकोकी रक्षा करनेवाले तथा बड़े ही कृपालु हैं। वे तुलसीदासके मनरूपी मानसरोवरमें कल्याणरूप सुन्दर हंसके समान निवास करते हैं ॥१२२॥

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल ।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जगजाल ॥१२३॥

भावार्थ—भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गौ, देवताओंके हितके लिये कृपालु श्रीरामचन्द्रजी मनुष्य-शरीर धारणकर [नाना प्रकारकी] लीलाएँ करते है, जिनके सुननेमात्रसे जगत्के [सारे] जंजाल कट जाते है ॥१२३॥

निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि ।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि ॥१२४॥

भावार्थ—देवता, पृथ्वी, गौ और ब्राह्मणों [की रक्षा] के लिये भगवान् अपनी इच्छासे ही [किसी कर्मबन्धनसे नही] अवतार धारण करते हैं। वहाँ सगुण स्वरूपके उपासक भक्तगण [सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि और सायुज्य] सब प्रकारके मोक्षोका परित्याग कर [परिकररूपसे] उनके साथ रहते हैं ॥१२४॥

प्रार्थना

परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम ।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम ॥१२५॥

भावार्थ—हे परमानन्दस्वरूप, कृपाके धाम, मनकी [सारी]

कामनाओंके पूर्ण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी! आप हमें अपनी अविचल प्रेमा भक्ति दीजिये ॥ १२५ ॥

भजनकी महिमा

बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल॥१२६॥

भावार्थ—जलके मथनेसे भले ही घी उत्पन्न हो जाय तथा बालूके पेरनेसे चाहे तेल निकल आवे; परंतु श्रीहरिके भजन बिना भवसागर-से पार नहीं हुआ जा सकता, यह सिद्धान्त अटल है ॥ १२६ ॥

हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं ।
भजिअ राम सब काम तजि अस बिचारि मन माहिं ॥१२७॥

भावार्थ—श्रीहरिकी मायाके द्वारा रचे हुए दोष और गुण श्रीहरिके भजन बिना नहीं नष्ट होते । ऐसा मनमें विचारकर सब कामनाओंको त्यागकर श्रीरामजीका भजन ही करना चाहिये ॥ १२७ ॥

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य ।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य ॥१२८॥

भावार्थ—जो चेतनको जड़ कर देते हैं और जड़को चेतन, ऐसे समर्थ श्रीरघुनाथजीको जो जीव भजते हैं वे धन्य हैं ॥ १२८ ॥

श्रीरघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान ।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन ॥१२९॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजीके प्रतापसे समुद्रमें पत्थर तर गये । अतएव वे लोग [निश्चय ही] मन्दबुद्धि हैं जो ऐसे श्रीरामजीको छोड़कर किसी दूसरे स्वामीको जाकर भजते हैं ॥ १२९ ॥

लव निमेष परमानु जुग बरस कलप सर चंड ।
भजसि न मन तेहि राम कहँ कालु जासु कोदंड ॥१३०॥

भावार्थ—हे मन ! तू उन श्रीरामको क्यों नही भजता; जिन[के] काल तो धनुप है और लव, निमेप, परमाणु, युग, वर्ष और क[ल्प] जिनके प्रचण्ड वाण हैं ॥ १३० ॥

तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम ।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोकधाम तजि काम॥१३१॥

भावार्थ—जवतक यह जीव शोकके घर काम (विषयो[की] कामना) को त्यागकर श्रीरामजीको नही भजता, तवतक उसके लि[ये] न तो कुशल है और न स्वप्नमें भी [कभी] उसके मनको शा[न्ति] मिलती है ॥ १३१ ॥

बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गएँ बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग ॥१३२॥

भावार्थ—सत्संगके विना भगवान्‌की लीला-कथाएँ सुनने को न[हीं] मिलती, भगवान्‌की रहस्यमयी कथाओके सुने विना मोह नही भाग[ता] और मोहका नाश हुए विना भगवान् श्रीरामजीके चरणोंमे सुदृ[ढ़] (अचल) प्रेम नही होता ॥ १३२ ॥

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु ।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु ॥१३३॥

भावार्थ—भगवान्‌पर श्रद्धा-विश्वास हुए विना उनकी भक्ति नही होती, भक्तिके विना श्रीरामजी पिघलते नही औ[र] श्रीरामजीकी कृपा विना जीव स्वप्नमें विश्राम (शान्ति) न[हीं] पाता ॥ १३३ ॥

सोरठा

अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल ।
भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद ॥१३४॥

भावार्थ—हे धीरबुद्धि! ऐसा विचारकर सारे कुतर्कों और सशयोको त्यागकर करुणाकी खान परम मनोहर दिव्यविग्रह, परम सुखदायक रघुवीर श्रीरामजीका भजन करिये ॥ १३४ ॥

भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन ।
तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीता रवन ॥१३५॥

भावार्थ—सुखके खजाने और करुणाके धाम भगवान् भाव (प्रेम) के वश है। अतएव ममता, मद और मानको त्यागकर निरन्तर सीतापति श्रीरामजीका भजन ही करना चाहिये ॥ १३५ ॥

कहहिं बिमलमति संत बेद पुरान बिचारि अस ।
द्रवहिं जानकी कंत तब छूटै संसार दुख ॥१३६॥

भावार्थ—निर्मल बुद्धिवाले सत वेद और पुराणोका विचार करके यही कहते है कि जानकीनाथ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी जब कृपा करते है, तभी ससारके दु.खोंसे छुटकारा मिलता है ॥ १३६ ॥

बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु ।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ॥१३७॥

भावार्थ—वेद-पुराण कहते हैं कि क्या बिना गुरुके ज्ञान हो सकता है, अथवा वैराग्यके बिना क्या ज्ञान प्राप्त हो सकता है? और श्रीहरिकी भक्ति बिना क्या कभी [सच्चे] सुखकी प्राप्ति हो सकती है? ॥ १३७ ॥

दोहा

रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूछ बिषान ॥१३८॥

भावार्थ—जो मनुष्य श्रीरामचन्द्रजीके भजन बिना ही निर्वाणपद (मोक्ष) चाहता है, वह ज्ञानवान् (समझदार) होनेपर भी बिना सींग-पूंछका (डूंडा) पशु है ॥ १३८ ॥

जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद करइ न सहस सहाइ ॥१३९॥

भावार्थ—वह सम्पत्ति, घर, सुख, मित्र, माता-पिता और भाई आदि सब जल जायें (नष्ट हो जायें), जो श्रीरामजीके चरणोंके सम्मुख होनेमें हँसते हुए (प्रसन्नतापूर्वक) सहायता नहीं करते ॥ १३९ ॥

सेइ साधु गुरु समुझि सिखि राम भगति थिरताइ।
लरिकाईं को पैरिबो तुलसी बिसरि न जाइ ॥१४०॥

भावार्थ—सच्चे साधु और सद्गुरुकी सेवा करके उनसे श्रीरामजीके तत्त्वको समझो और सीखो, तब श्रीरामकी भक्ति स्थिर हो जायगी; क्योंकि बचपनमें सीखा हुआ तैरना फिर नहीं भूलता ॥ १४० ॥

रामसेवककी महिमा

सबइ कहावत राम के सबहि राम की आस।
राम कहहिं जेहि आपनो तेहि भजु तुलसीदास ॥१४१॥

भावार्थ—सभी श्रीरामजीके भक्त कहलाते हैं और सभीको श्रीरामचन्द्रजीकी ही आशा है। परंतु हे तुलसीदास ! तू तो उसीका

भजन (सेवा) कर, जिसको स्वयं श्रीरामचन्द्रजी अपना भक्त कहते हैं ॥१४१॥

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान ।
रुद्रदेह तजि नेहबस संकर भे हनुमान ॥१४२॥

भावार्थ—चतुरलोग उसी शरीरका आदर करते हैं, जिस शरीर-से श्रीरामजीमें प्रेम होता है । इस प्रेमके कारण ही श्रीशंकरजी अपने रुद्रदेहको त्यागकर हनुमान् बन गये ॥१४२॥

जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान ।
पुरुषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान ॥१४३॥

भावार्थ—श्रीरामजीकी सेवामे परम आनन्द जानकर पितामह ब्रह्माजी सेवक (जाम्बवान्) बन गये और श्रीशिवजी हनुमान् हो गये। इस रहस्यको समझो और प्रेमकी महिमाका अनुमान लगाओ ॥१४३॥

तुलसी रघुबर सेवकहि खल डाटत मन माखि ।
बाजराज के बालकहि लवा दिखावत आँखि ॥१४४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि दुष्ट लोग मनमें क्रोध करके श्रीरघुनाथजीके सेवकको वैसे ही डाँटा करते हैं जैसे बाजराजके बच्चेको बटेर आँख दिखाता है ॥१४४॥

रावन रिपु के दास तें कायर करहिं कुचालि ।
खर दूषन मारीच ज्यों नीच जाहिंगे कालि ॥१४५॥

भावार्थ—कायर (नीचलोग) ही रावणारि श्रीरामजीके दासोंसे कुचाल किया करते हैं। वे नीच खरदूषण या मारीचकी भाँति कल ही (शीघ्र ही) संसारसे कूच कर जायँगे ॥१४५॥

पुन्य पाप जस अजस के भावी भाजन भूरि ।
संकट तुलसीदास को राम करहिंगे दूरि ॥१४६॥

भावार्थ—तुलसीदासका संकट तो श्रीरामजी दूर कर ही देंगे। हाँ, सहायक और बाधक लोग भविष्यमें पुण्य-पाप तथा यश-अपयशके पात्र खूब होंगे ॥१४६॥

खेलत बालक ब्याल सँग मेलत पावक हाथ ।
तुलसी सिसु पितु मातु ज्यों राखत सिय रघुनाथ* ॥१४७॥

भावार्थ—जैसे साँपके साथ खेलते और अग्निमें हाथ डालते हुए बालकको उसके माता-पिता रोक लेते हैं वैसे ही तुलसीदासरूपी शिशुको विषयरूपी विषधर सर्प अथवा विषयरूपी ज्वालाकी ओर जाते देखकर माता-पितारूप श्रीसीतारामजी बचा लेते है ॥१४७॥

तुलसी दिन भल साहु कहँ भली चोर कहँ राति ।
निसि बासर ता कहँ भलो मानै राम इताति ॥१४८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि साहूकारके लिये दिन अच्छा है और चोरके लिये रात अच्छी है; परंतु जो श्रीरामजीकी आज्ञा मानता है, उसके लिये रात-दिन दोनों कल्याणकारी हैं ॥१४८॥

राममहिमा

तुलसी जाने सुनि समुझि कृपासिंधु रघुराज ।
महँगे मनि कंचन किए सौंधे जग जल नाज ॥१४९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि हमने संत-महात्माओंसे

*रामचरितमानसमे इसी भावकी निम्नलिखित अर्द्धाली मिलती है—
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई । तहँ राखइ जननी अरगाई ॥
(अरण्य० ४२। ३)

सुनकर और स्वयं समझकर यह भलीभाँति जान लिया है कि श्रीरघुनाथ कृपाके समुद्र हैं, जिन्होने मणियोको और सोनेको तो महँगा कर दिया; परंतु प्राण धारण करनेके लिये सबसे अधिक आवश्यक वस्तु जल और अन्नको जगत्में सस्ता (सुलभ) बना दिया ॥१४९॥

रामभजनकी महिमा

सेवा सील सनेह बस करि परिहरि प्रिय लोग ।
तुलसी ते सब राम सों सुखद सँजोग वियोग ॥१५०॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि जगत्के सम्बन्धी प्रियजनों-को (उनके मोहको) त्यागकर सेवा, शील और प्रेमसे श्रीरामजीको वशमे करो। श्रीरामजीके प्रति सेवा, प्रेम आदि करनेपर प्रत्येक संयोग-वियोग सुखप्रद हो जायगा (क्योकि मोहवश ही मनुष्यको जन्म-मरणशील प्रियजनो या प्रिय पदार्थोके सयोग-वियोगमें सुख-दुःख होता है और रामजीसे तो कभी वियोग हो ही नही सकता ॥१५०॥

चारि चहत मानस अगम चनक चारि को लाहु ।
चारि परिहरें चारि को दानि चारि चख चाहु ॥१५१॥

भावार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चारोको मनुष्य चाहता है; परतु ये मनसे अगम है मिलते नही। मिलते हैं चार चने ही (केवल कुछ विषय ही), अतएव इन चारोकी चाह छोड़कर चारोके देनेवाले भगवान् श्रीरामजीको बाहरके दो और भीतरके दो (मन-बुद्धि)—इन चारो नेत्रोसे देखो ॥१५१॥

रामप्रेमकी प्राप्तिका सुगम उपाय

सूधे मन सूधे बचन सूधी सब करतूति ।
तुलसी सूधी सकल विधि रघुबर प्रेम प्रसूति ॥१५२॥

भावार्थ—जिसका मन सरल है, वाणी सरल है और समस्त क्रियाएँ सरल हैं, उसके लिये भगवान् श्रीरघुनाथजीके प्रेमको उत्पन्न करनेवाली सभी विधियाँ सरल हैं अर्थात् निष्कपट (दम्भरहित) मन, वाणी और कर्मसे भगवान्का प्रेम अत्यन्त सरलतासे प्राप्त हो सकता है ॥१५२॥

रामप्राप्तिमें बाधक

बेष बिसद बोलनि मधुर मन कटु करम मलीन ।
तुलसी राम न पाइऐ भएँ बिषय-जल मीन ॥१५३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि ऊपरका वेष साधुओंका-सा हो और बोली भी मीठी हो, परंतु मन कठोर और कर्म भी मलिन हो—इस प्रकार विषयरूपी जलकी मछली बने रहनेसे श्रीरामजीकी प्राप्ति नही होती (श्रीरामजी तो सरल मनवालेको ही मिलते है) ॥१५३॥

बचन बेष तें जो बनइ सो बिगरइ परिनाम ।
तुलसी मन तें जो बनइ बनी बनाई राम ॥१५४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि दम्भसे भरे हुए बाहरी वेष और वचनोंसे जो काम बनता है, वह दम्भ खुलनेपर अन्तमें बिगड़ जाता है; परंतु जो काम सरल मनसे बनता है, वह तो श्रीरामकी कृपासे बना-बनाया ही है ॥१५४॥

रामकी अनुकूलतामें ही कल्याण है

नीच मीचु लै जाइ जो राम रजायसु पाइ ।
तौ तुलसी तेरो भलो न तु अनभलो अघाइ ॥१५५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि रे नीच ! यदि श्रीरामजीकी

आज्ञा पाकर तुझे मृत्यु ले जाय तो उसमें भी तेरा कल्याण ही है। परंतु मनमाने जीवनमें तो महान् अकल्याण ही है ॥ १५५ ॥

श्रीरामकी शरणागतवत्सलता

जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥१५६॥

भावार्थ—जो नीच जातिकी और पापोकी जन्मभूमि थी, ऐसी स्त्री (शबरी) को भी जिन्होंने मुक्त कर दिया, अरे महामूर्ख मन! तू ऐसे प्रभु श्रीरामको भूलकर सुख चाहता है? ॥ १५६ ॥

बंधु बधू रत कहि कियो बचन निरुत्तर बालि।
तुलसी प्रभु सुग्रीव की चितइ न कछू कुचालि ॥१५७॥

भावार्थ—श्रीरामजीने बालिको तो यह कहकर निरुत्तर कर दिया कि तू भाईकी स्त्रीपर आसक्त है; परंतु तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभुने सुग्रीवकी वैसी ही कुचालपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया ॥ १५७ ॥

बालि बली बलसालि दलि सखा कीन्ह कपिराज।
तुलसी राम कृपालु को बिरद गरीब निवाज ॥१५८॥

भावार्थ—श्रीरामजीनें शरीरसे बली और सेना-राज्यादि बलोंसे युक्त बालिको मारकर सुग्रीवको अपना सखा और बदरोंका राजा बना दिया। तुलसीदासजी कहते हैं कि कृपालु श्रीरामचन्द्रजीका विरद ही गरीबोंकी रक्षा करना है ॥ १५८ ॥

कहा बिभीषन लै मिल्यो कहा बिगार्‍यो बालि।
तुलसी प्रभु सरनागतहि सब दिन आए पालि ॥१५९॥

भावार्थ—बालिने तो भगवान्‌का क्या बिगाड़ा था (जिससे उसको मार डाला) और विभीषण ऐसा क्या लेकर आया था

(जिससे भगवान्‌ने उसे लङ्काका राज्य देकर अभय कर दिया) ? तुलसीदासजी कहते हे कि प्रभु सदासे ही अपने शरणागतकी रक्षा करते आये हे ॥१५६ ॥

तुलसी कोसलपाल सो को सरनागत पाल ।
भज्यो बिभीषन बंधु भय भंज्यो दारिद काल ॥१६०॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि कोसलपति श्रीरामजीके समान शरणागतका पालन करनेवाला और कौन है ? विभीषणने भाई रावणके डरसे श्रीरामजीका भजन किया था, परंतु भगवान्‌ने उसकी दरिद्रताको तथा कालको नष्ट कर दिया (लङ्काका राज्य देकर अमर कर दिया) ॥ १६० ॥

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि ।
चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि ॥१६१॥

भावार्थ—[श्रीकाकभुशुण्डिजी गरुड़जीसे कहते हैं कि] हे पक्षि-राज ! श्रीरामजीका चित्त [अपने लिये तो] वज्रसे अधिक कठोर है और [भक्तोंके लिये] फूलसे भी अधिक कोमल है । कहिये, फिर इस चित्तका रहस्य किसकी समझमे आ सकता है ॥ १६१ ॥

बलकल भूषन फल असन तृन सज्या द्रुम प्रीति ।
तिन्ह समयन लंका दई यह रघुबर की रीति ॥१६२॥

भावार्थ—भगवान् श्रीरामजी जिस समय स्वयं वल्कल-वस्त्रोंसे भूषित रहते थे, फल खाते थे, तिनकोंकी शय्यापर सोते थे और वृक्षोसे प्रेम करते थे, उसी समय उन्होने विभीषणको लङ्का प्रदान की । श्रीरघुनाथजीकी यही रीति है (स्वयं त्याग करते हैं और भक्तोंको परम ऐश्वर्य दे देते हैं) ॥ १६२ ॥

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥१६३॥

भावार्थ—जो सम्पत्ति (लङ्काका राज्य) रावणको शिवजीने दस सिरोकी वलि चढानेपर दी थी, वही सम्पदा श्रीरघुनाथजीने विभीषणको वडे संकोचके साथ दी (यह सोचते रहे कि मैंने इस शरणागत भक्तको तुच्छ वस्तु ही दी) ॥ १६३ ॥

अबिचल राज बिभीषनहि दीन्ह राम रघुनाथ।
अजहुँ बिराजत लंक पर तुलसी सहित समाज ॥१६४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि रघुराज श्रीरामजीने विभीषणको अविचल राज्य दे दिया, इसीसे वह आज भी अपने समाज (परिकर) सहित लङ्काके राज्यपदपर विराजमान है॥१६४॥

कहा बिभीषन लै मिल्यो कहा दियो रघुनाथ।
तुलसी यह जानें बिना मूढ़ मीजिहैं हाथ ॥१६५॥

भावार्थ—विभीषण क्या लेकर भगवान्‌से मिला था और श्रीरघुनाथजीने उसे क्या दे डाला ? तुलसीदासजी कहते हैं, इस बातको बिना जाने मूर्ख लोग हाथ ही मलते रह जायँगे (खाली हाथ मिलनेवाले विभीषणको श्रीरामने लङ्काका अचल राज्य और अपनी अविचल भक्ति दे दी। भगवान् श्रीरामके इस स्वभावको न जाननेवाले लोग श्रीरामकी शरण न होकर इस दु:खमय और अनित्य जगत्‌मे ही भटकते रहेगे) ॥ १६५ ॥

बैरि बंधु निसिचर अधम तज्यो न भरें कलंक।
झूठें अघ सिय परिहरी तुलसी साइँ ससंक ॥१६६॥

भावार्थ—शत्रु रावणके भाई, नीच राक्षस और [भाईको त्याग देनेके] कलंकसे भरे रहनेपर भी विभीषणको तो रामने अपनी शरण-

में ले लिया और झूठे ही अपराधके कारण पवित्रात्मा सीताका त्याग कर दिया। तुलसीदासके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी बड़े ही सावधान हैं (लीला व्यवहारमें अपने अंदर किसी प्रकारका दोष नही आने देते) ॥ १६६ ॥

तेहि समाज कियो कठिन पन जेहिं तौल्यो कैलास ।
तुलसी प्रभु महिमा कहौं सेवक को विस्वास ॥१६७॥

भावार्थ—जिस रावणने कैलासको हाथोंसे तोला था, उसीके दरबारमें अङ्गदने पाँव रोपकर कठिन प्रण कर लिया [कि कोई यदि मेरा पैर हटा देगा तो मैं सीता को हार जाऊँगा और श्रीरामजी लौट जायँगे तथा प्रभुने इस प्रणको भङ्ग नही होने दिया]। तुलसीदासजी कहते हैं, इसे मैं प्रभुकी महिमा कहूँ या सेवक (अङ्गद) का विश्वास वतलाऊँ ॥ १६७ ॥

सभा सभासद निरखि पट पकरि उठायो हाथ ।
तुलसी कियो इगारहों बसन बेस जदुनाथ ॥१६८॥

भावार्थ—जिस समय द्रौपदीने सभाकी ओर सभासदोंकी ओर देखकर (किसीसे भी रक्षाकी आशा न समझकर) एक हाथसे अपनी साड़ीको पकड़ा और दूसरे हाथको ऊँचा करके भगवान्‌को पुकारा, तुलसीदासजी कहते है कि उसी समय यादवपति भगवान् श्रीकृष्णने ग्यारहवाँ वस्त्रावतार धारण कर लिया (दस अवतार भगवान्‌के प्रसिद्ध हैं, यह ग्यारहवाँ हुआ) ॥ १६८ ॥

त्राहि तीनि कह्यो द्रौपदी तुलसी राज समाज ।
प्रथम बढ़े पट बिय विकल चहत चकित निज काज ॥१६९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि राजसभामें [जब दुःशासन द्रौपदीका चीर खीचने लगा तब] द्रौपदीने घबड़ाकर तीन बार

'त्राहि-त्राहि' पुकारा। पहली त्राहि कहते ही वस्त्र बढ गया, दूसरीमे भगवान् व्याकुल हो उठे कि द्रौपदीको सतानेवालोके लिये अब क्या किया जाय? [तीसरीमें] चकित होकर अपने (दुष्टसंहाररूपी) कार्यकी इच्छा करने लगे (अर्थात् दु:शासनादि कौरवोके संहारका निश्चय कर लिया अर्थात् भक्तकी सच्चे मनसे की हुई एक भी पुकार व्यर्थ नही जाती ॥१६९॥

सुख जीवन सब कोउ चहत सुख जीवन हरि हाथ।
तुलसी दाता मागनेउ देखिअत अबुध अनाथ ॥१७०॥

भावार्थ—सब कोई सुखमय जीवन चाहते हैं, परंतु सुखमय जीवन श्रीहरिके हाथमे है। तुलसीदासको तो जगत्मे दाता और भिखारी दोनो ही मूर्ख और अनाथ दिखायी देते हैं (दाता इसलिये मूर्ख है कि वे दानके अभिमानसे बँध जाते हैं और भिखारी इसलिये अनाथ है कि वे सर्वलोकमहेश्वर, सबके सुहृद्, अकारण कृपालु, भगवान्को छोडकर नाशवान् लोगोंसे नाशवान् भोग मांगते है ॥१७०॥

कृपिन देइ पाइअ परो बिनु साधें सिधि होइ।
सीतापति सनमुख समुझि जो कीजै सुभ सोइ ॥१७०॥

भावार्थ—कृपण दे देता हैं, पड़ा मिल जाता हैं, बिना ही साधनके सिद्धि हो जाती है। श्रीजानकीनाथको सम्मुख समझकर (उनकी कृपापर भरोसा करके) जो कुछ कीजिये, वही शुभ हो जाता है ॥१७१॥

दंडक बन पावन करन चरन सरोज प्रभाउ।
ऊसर जामहिं खल तरहिं होइ रंक ते राउ ॥१७२॥

भावार्थ—दण्डकवनको पवित्र (शापमुक्त) करनेवाले भगवान्के

चरणकमलोके प्रभावसे ऊसर भूमिमें भी अन्न उत्पन्न हो जाता है, दुष्ट तर जाते है और रङ्क (दरिद्री) भी राजा वन जाता है ॥१७२॥

विनहीं रितु तरुबर फरत सिला द्रवति जल जोर ।
राम लखन सिय करि कृपा जब चितवत जेहि ओर॥१७३॥

भावार्थ—श्रीराम, लक्ष्मण और सीताजी जव कृपा करके जिसकी तरफ ताक लेते हैं तब विना ही ऋतुके वृक्ष फलने लगते हैं और पत्थरकी शिलाओसे वड़े जोरसे जल वहने लगता है ॥१७३॥

सिला सुतिय भइ गिरि तरे मृतक जिए जग जान ।
राम अनुग्रह सगुन सुभ सुलभ सकल कल्यान ॥१७४॥

भावार्थ—श्रीरामजीकी कृपासे सव शुभ सद्गुण आ जाते हैं, सव प्रकारके कल्याण सुलभ हो जाते है (सहज ही मिल जाते हैं)। इस वातको तमाम जगत् जानता है कि श्रीरामकृपासे शिला सुन्दरी स्त्री (अहल्या) वन गयी, समुद्रमे पहाड़ तर गये और युद्धमें मरे हुए वानर-भालु पुन. जीवित हो गये ॥१७४॥

सिला साप मोचन चरन सुमिरहु तुलसीदास ।
तजहु सोच संकट मिटिहिं पूजहि मन की आस ॥१७५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि शिलाको (अहल्याको) शापसे मुक्त करनेवाले श्रीरामजीके चरणोंका स्मरण करो और सब चिन्ताओका त्याग कर दो। इस प्रकार अनन्य श्रीरामचिन्तनसे तुम्हारे सव संकट दूर हो जायँगे और मनोकामना पूर्ण हो जायगी ॥१७५॥

मुए जिआए भालु कपि अवध बिप्र को पूत ।
सुमिरहु तुलसी ताहि तू जाको मारुति दूत ॥१७६॥

भावार्थ—जिन्होने लङ्कामे मरे हुए बंदर-भालुओको जिला दिया और अयोध्यामे मरे हुए एक ब्राह्मणके बालकको जीवित कर दिया, हे तुलसीदास ! तुम उनका स्मरण करो जिनके दूत पवनपुत्र हनुमान जी हैं (जो सञ्जीवनी बूटी लाकर लक्ष्मणजीको जीवित करनेवाले हैं) ॥१७६॥

प्रार्थना

काल करम गुन दोष जग जीव तिहारे हाथ ।
तुलसी रघुबर रावरो जानु जानकीनाथ ॥१७७॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि हे रघुनाथजी ! काल, कर्म, गुण, दोष, जगत्-जीव—सब आपके ही अधीन हैं। हे जानकीनाथ ! इस तुलसीको भी अपना ही जानकर अपनाइये ॥१७७॥

रोग निकर तनु जरठपनु तुलसी संग कुलोग ।
राम कृपा लै पालिऐ दीन पालिबे जोग ॥१७८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है—मेरा शरीर रोगोकी खान है, वृद्धावस्था है और बुरे लोगोका सङ्ग है। हे राम ! आप कृपा करके मुझे अपनाकर मेरा पालन कीजिये, यह दीन पालने योग्य है ॥१७८॥

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर ।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर ॥१७९॥

भावार्थ—हे रघुवीर ! मेरे समान तो कोई दीन नही है और आपके समान कोई दीनबन्धु नही है। ऐसा विचारकर हे रघुवंश-मणि ! जन्म-मरणके महान् भयका नाश कीजिये ॥१७९॥

भव भुअंग तुलसी नकुल डसत ग्यान हरि लेत ।
चित्रकूट एक औषधी चितवत होत सचेत ॥१८०॥

भावार्थ—संसाररूपी सर्प तुलसीदासरूपी नेवलेको डसते ही उसका सारा ज्ञान हरण कर लेता है; परन्तु चित्रकूट एक ऐसी औषध है कि उसकी ओर देखते ही वह पुनः सचेत हो जाता है (चित्रकूटकी बड़ी महिमा है) ॥१८०॥

हौंहु कहावत सबु कहत राम सहत उपहास ।
साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास ॥१८१॥

भावार्थ—[तुलसीदासजी कहते हैं कि] सब लोग मुझे श्रीराम-जीका दास कहते हैं और मैं भी बिना लज्जा-संकोचके कहलाता हूँ (कहनेवालोंका विरोध नहीं करता)। कृपालु श्रीरामजी इस उपहास-को सहते हैं कि श्रीजानकीनाथजी-सरीखे स्वामीका तुलसीदास-सा सेवक है! ॥१८१॥

रामराज्यकी महिमा

राम राज राजत सकल धरम निरत नर नारि ।
राग न रोष न दोष दुख सुलभ पदारथ चारि ॥१८२॥

भावार्थ—रामराज्यमें सभी नर-नारी अपने-अपने धर्ममें रत होकर शोभित हो रहे हैं। कहीं भी राग (आसक्ति), क्रोध, दोष और दुःख नहीं है; धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पदार्थ सुलभ हो रहे है ॥१८२॥

राम राज संतोष सुख घर बन सकल सुपास ।
तरु सुरतरु सुरधेनु महि अभिमत भोग बिलास ॥१८३॥

भावार्थ—रामराज्यमें सब प्रकारसे सन्तोष और सुख है, घरमे तथा वनमें दोनो ही जगह सब प्रकारकी सुविधाएँ हैं। वृक्ष कल्प-वृक्षके समान और पृथ्वी कामधेनुके समान इच्छामात्रको पूर्ण करती है और मनोवाञ्छित भोग-विलास सबको प्राप्त हैं ॥१८३॥

खेती बनि बिद्या बनिज सेवा सिलिप सुकाज ।
तुलसी सुरतरु सरिस सब सुफल राम कें राज ॥१८४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामजीके राज्यमे खेती, मजदूरी, विद्या, व्यापार, सेवा और कारीगरी तथा अन्य सुन्दर कार्य कल्पवृक्षके समान सब सुन्दर शुभ फलोके देनेवाले हैं ॥१८४॥

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र कें राज ॥१८५॥

भावार्थ—श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमे दण्ड केवल संन्यासियोके हाथोमे रह गया था और भेद [सुर-तालके भेदके अर्थमें] केवल नाचनेवालोंके नृत्य-समाजमें था; और 'जीतो' शब्द केवल मनको जीतनेके प्रसङ्गमे ही सुन पडता था (राजनीतिमें साम, दान, दण्ड, भेद—ये चार शत्रुको जीतनेके उपाय कहे गये हैं। श्रीरामराज्यमें कोई शत्रु था ही नही, जिसके लिये इनसे काम लेना पड़ता; अतएव दण्ड और भेदके नामसे तो क्रमशः उपर्युक्त वस्तु तथा भाव रह गये थे और साम, दान स्वाभाविक सात्त्विक गुण हैं ही) ॥१८५॥

कोपें सोच न पोच कर करिअ निहोर न काज ।
तुलसी परमिति प्रीति की रीति राम कें राज ॥१८६॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें प्रेमकी रीति सीमातक पहुँच गयी थी। इनसे न तो किसीके क्रोध करनेपर कोई उसकी चिन्ता ही करता और न उसका कोई अपकार ही करता। सब लोग सबका काम प्रेमसे करते। काम करनेमें कोई किसीपर अहसान नही जताता ॥१८६॥

श्रीरामकी दयालुता

मुकुर निरखि मुख राम भ्रू गनत गुनहि दै दोष।
तुलसी से सठ सेवकन्हि लखि जनि परहिं सरोष ॥१८७॥

भावार्थ—श्रीरामजी दर्पणमे अपना श्रीमुख निरखकर अपनी टेढ़ी भौंहोको जो एक गुण है दोष देते हैं और सोचते हैं कि तुलसी सरीखे दुष्ट सेवकोको कही इन टेढी भृकुटियोमें क्रोध न दिखायी देने लगे ॥१८७॥

श्रीरामकी धर्मधुरन्धरता

सहसनाम मुनि भनित सुनि तुलसी बल्लभ नाम।
सकुचित हियँ हँसि निरखि सिय धरम धुरंधर राम॥१८८॥

भावार्थ—मुनिके कहे हुए रामसहस्रनाममे 'तुलसीवल्लभ' अपना नाम सुनकर धर्मधुरंधर भगवान श्रीरामजी हँसकर सीताजीकी ओर देखते हैं और मन-ही-मन सकुचाते हैं ॥१८८॥

श्रीसीताजीका अलौकिक प्रेम

गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि ॥१८९॥

भावार्थ—[जनकपुरीमें सखियोके कहनेपर भी] मुनि गौतमकी पत्नी अहल्याकी गतिको याद करके (जो चरणस्पर्श करते ही देवी बनकर आकाशमें उड़ गयी थी) श्रीसीताजी अपने हाथोसे भगवान् श्रीरामजीके पैर नही छूती। रघुवंशविभूषण श्रीरामजी सीताजीके इस अलौकिक प्रेमको जानकर मन-ही-मन हँसने लगे ॥१८९॥

श्रीरामकी कीर्ति

तुलसी बिलसत नखत निसि सरद सुधाकर साथ ।
मुकुता झालरि झलक जनु राम सुजसु सिसु हाथ ॥१९०॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाके साथ रात्रिमें नक्षत्रावली ऐसी शोभा देती है, मानो श्रीरामजीके सुयशरूपी शिशुके हाथमे मोतियोकी झालर झलमला रही हो ॥ १९० ॥

रघुपति कीरति कामिनी क्यों कहै तुलसीदासु ।
सरद अकास प्रकास ससि चारु चिबुक तिल जासु ॥१९१॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजीकी कीर्तिरूपी कामिनीका तुलसीदास कैसे वखान कर सकता है ? शरत्पूर्णिमाके आकाशमे प्रकाशित होनेवाला चन्द्रमा मानो उस कीर्ति-कामिनीकी ठुड्डीका तिल है ॥१९१॥

प्रभु गुन गन भूषन बसन बिसद बिसेष सुबेस ।
राम सुकीरति कामिनी तुलसी करतब केस ॥१९२॥

भावार्थ—प्रभु श्रीरामजीके गुणोके समूह श्रीरामजीकी सुन्दर कीर्तिरूपी कामिनीके वस्त्र और आभूषण हैं, जिनसे उसका वेष बहुत ही स्वच्छ और सुन्दर जान पडता है। और तुलसीदासकी [उस कीर्तिका वर्णन करनारूपी] जो करतूत है, वह [अनधिकार प्रचार होनेके कारण अत्यन्त काली है, इसलिये] उसके केश हैं ॥ १९२ ॥

राम चरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु ।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु ॥१९३॥

भावार्थ—श्रीरामचन्द्रजीके चरित्र पूर्णिमाके चन्द्रमाकी किरणोंके समान सभीको सुख देनेवाले हैं, परतु सज्जनरूपी कुमुद और चकोरोंके चित्तके लिए तो वे विशेषरूपसे हितकारी और महान् लाभरूप है ॥ १९३ ॥

रघुबर कीरति सज्जननि सीतल खलनि सुताति ।
ज्यों चकोर चय चक्कवनि तुलसी चाँदनि राति ॥१९४॥

भावार्थ—जिस प्रकार चाँदनी रात चकोरोंके समूहके लिए शान्तिदायिनी और चकवोंके लिये विशेप ताप देनेवाली होती है, तुलसीदासजी कहते है कि उसी प्रकार श्रीरघुनाथजीकी कीर्ति सज्जनोके लिये शीतल [सुख देनेवाली] और दुर्जनोको विशेष जलानेवाली होती है ॥ १९४ ॥

रामकथाकी महिमा

राम कथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु ।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु ॥१९५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि श्रीरामजीकी कथा मन्दाकिनी नदी है, सुन्दर [भक्तिसे पूर्ण निर्दोष] चित्त चित्रकूट है और स्नेह ही सुन्दर वन है, जिसमे श्रीसीतारामजी विहार करते हैं ॥ १९५ ॥

स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान ।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान ॥१९६॥

भावार्थ—श्यामा (कजली) गौ काली होनेपर भी उसका दूध बहुत उज्ज्वल और गुणदायक होता है, इसीसे लोग उसे [बडे चावसे] पीते हैं। इसी प्रकार बुद्धिमान् संतजन श्रीसीतारामजीके यशको गँवारू भाषामे होनेपर भी [बड़े चावसे] गाते और सुनते हैं ॥१९६॥

हरि हर जस सुर नर गिरहुँ बरनहिं सुकबि समाज ।
हाँड़ी हाटक घटित चरु राँधें स्वाद सुनाज ॥१९७॥

भावार्थ—सुकविगण भगवान् श्रीहरि और भगवान् श्रीशंकरके

यशको संस्कृत और भाषा दोनोंमें ही वर्णन करते हैं। उत्तम अनाज-को चाहे मिट्टीकी हाँड़ीमें पकाया जाय, चाहे सोनेके पात्रमें, वह स्वादिष्ट ही होता है ॥ १९७ ॥

राममहिमाकी अज्ञेयता

तिल पर राखेउ सकल जग बिदित बिलोकत लोग ।
तुलसी महिमा राम की कौन जानिबे जोग ॥१९८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामजीकी महिमाको [पूर्णरूपसे] जाननेका अधिकारी कौन है ? (अर्थात् कोई नहीं है।) उन्होंने आँखके काले तिल (पुतली) पर सारे जगत्को रख दिया है, इस बातको सब लोग जानते हैं और प्रत्यक्ष देखते हैं (आँखोंका छोटा-सा तिल यदि बिगड़ जाय तो इतना भारी विस्तृत जगत् जरा-सा भी नहीं दीख पड़ता) ॥ १९८ ॥

श्रीरामजीके स्वरूपकी अलौकिकता

सोरठा

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर ।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह ॥१९९॥

भावार्थ—हे रामजी ! आपका स्वरूप वाणीके अगोचर और बुद्धिसे परे है। इस स्वरूपको न कोई जान पाया है, न बखान कर सकता है, न उसका पार ही पा सकता है; इसलिये वेद सदा 'नेति-नेति' कहकर उसका वर्णन करते हैं ॥ १९९ ॥

ईश्वर-महिमा

दोहा

माया जीव सुभाव गुन काल करम महदादि ।
ईस अंक तें बढ़त सब ईस अंक बिनु बादि ॥२००॥

भावार्थ—माया, जीव, स्वभाव, गुण, काल, कर्म और महत्त्वादि सब ईश्वररूपी अङ्कके सयोगसे वढते हैं और उस अङ्कके विना व्यर्थ हो जाते हैं ॥ २०० ॥

श्रीरामजीकी भक्तवत्सलता

हित उदास रघुबर बिरह बिकल सकल नर नारि।
भरत लखन सिय गति समुझि प्रभु चख सदा सुबारि ॥२०१॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजीके विरहमे उनके मित्र उदासीन, सभी स्त्री-पुरुप व्याकुल थे; परतु श्रीभरतजी, श्रीलक्ष्मणजी और श्रीसीता-जीकी दशाको समझकर तो प्रभु श्रीरामजीके नेत्रोमे भी सदा आँसू भरे रहते थे (अर्थात् समस्त अवधवासी तो श्रीरामजीके कष्टसे दु खी थे; परतु स्वयं श्रीरामजी भरतजी, लक्ष्मणजी और सीताजीके दु.खसे दुःखित रहते थे) ॥ २०१ ॥

सीता, लक्ष्मण और भरतके रामप्रेमकी अलौकिकता

सीय सुमित्रा सुवन गति भरत सनेह सुभाउ ।
कहिबे को सारद सरस जनिबे को रघुराउ ॥२०२॥

भावार्थ—श्रीसीताजी तथा श्रीलक्ष्मणजीकी अनन्य प्रेमकी चाल और श्रीभरतजीके प्रेम और स्वभावको कहनेके लिए केवल सरस्वती-जी ही समर्थ हैं और जाननेके लिये केवल श्रीरघुनाथजी ही ॥२०२॥

जानी राम न कहि सके भरत लखन सिय प्रीति ।
सो सुनि गुनि तुलसी कहत हठ सठता की रीति ॥२०३॥

भावार्थ—श्रीभरतजी, श्रीलक्ष्मणजी और श्रीसीताजीके प्रेमको श्रीरामचन्द्रजी ही जान सके; पर वे भी उसका वर्णन नही कर सके। इस वातको सुनकर और विचारकर भी तुलसीदास हठवश उनके

प्रेमका वर्णन करने चला है, यह उसकी दुष्टता और मूर्खताकी ही निशानी है ॥ २०३ ॥

सब बिधि समरथ सकल कह सहि साँसति दिन राति।
भलो निबाहेउ सुनि समुझि स्वामिधर्म सब भाँति ॥२०४॥

भावार्थ—प्रेमके तत्त्वको जानने और निवाहनेमे श्रीरामजी ही सब प्रकारसे समर्थ हैं, सब लोग यही कहते है। इसीके अनुसार उन्होने सब कुछ सुन-समझकर दिन-रात कष्ट सहते हुए अपने स्वामि-धर्मको सब प्रकारसे भलीभाँति निवाहा। (सीताको वन-वन ढूंढते फिरे, लक्ष्मणके लिये कितना विलाप किया और भरतको तो कभी चित्तसे हटाया ही नही—भरतकी प्रशसा स्वयं निम्नलिखित शब्दोमे की ॥ २०४ ॥

भरत-महिमा

भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ ॥२०५॥

भावार्थ—[अयोध्याके राज्यकी तो बात ही क्या है] ब्रह्मा, विष्णु और महेशका पद पाकर भी भरतको राजमद नही हो सकता। काँजीकी बूंदोसे भला क्या कभी क्षीरसागर नष्ट हो सकता है (फट सकता है) ? ॥ २०५ ॥

संपति चकई भरत चक मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिजराँ राखे भा भिनुसार ॥२०६॥

भावार्थ—[भरद्वाजजीके योगबलसे जुटायी हुई] भोग-विलासकी सामग्री मानो चकवी है और भरतजी चकवा हैं तथा भरद्वाज मुनिकी आज्ञा खिलाड़ी है, जिसने उस रातको आश्रमरूपी पिंजड़ेमे

दोनों (चकवी-चकवा) को बंद कर रक्खा और वैसे ही सवेरा हो गया, परंतु दोनोका मिलन नही हुआ। (श्रीरामजीसे मिलनेके लिये जब भरतजी सब अयोध्यावासियोको साथ लेकर चित्रकूट जा रहे थे, तब रास्तेमें भरद्वाजजीने उनका आतिथ्यसत्कार किया और तपोबलसे नाना प्रकारकी ऐश्वर्यपूर्ण भोगसामग्रियाँ उत्पन्न कर दी, परंतु भरतजीने समीप रहनेपर भी उस सम्पत्तिकी ओर—भोग-सामग्रियोकी ओर मनसे भी नही ताका, जैसे चकवा-चकवी रातको एक पिंजरेमें बद रहनेपर भी एक दूसरेकी ओर नहीं देखते।) ॥ २०६ ॥

सधन चोर मग मुदित मन धनी गही ज्यों फेंट।
त्यों सुग्रीव बिभीषनहि भई भरत की भेंट ॥२०७॥

भावार्थ—जैसे धन लेकर प्रसन्न मनसे रास्तेमे जाते हुए चोरको धनी आकर पकड़ ले, उस समय उस चोरकी जैसी हालत होती है, वैसी ही हालत भरतसे मिलनेपर सुग्रीव और विभीषणकी हुई। (सुग्रीव और विभीषणने अपनेको भगवान्‌का प्रेमी सखा समझ रक्खा था और इस प्रेमरूपी धनको लिये ही वे फूलते हुए भरतजीके सामने पहुँचे; परंतु वहाँ प्रेममूर्ति भरतजीको देखते ही वे दोनो यह समझकर सकुचा गये कि वास्तवमें प्रेमके धनी तो भरतजी ही हैं, जिन्होने बड़े भाईके लिये यह दशा स्वीकार की है। हम तो नामके ही प्रेमी हैं, जो राज्यके लिये भाइयोंको मरवाकर भगवान्‌के सखा कहलानेका दावा करते हैं।) ॥ २०७ ॥

राम सराहे भरत उठि मिले राम सम जानि।
तदपि बिभीषन कीसपति तुलसी गरत गलानि ॥२०८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि यद्यपि श्रीरामजीने विभीषण

और सुग्रीवकी बड़ी प्रशंसा की और भरतजी भी उन्हें श्रीरामजीके समान समझकर ही उठकर उनसे मिले, तथापि वे ग्लानिमें गले ही जाते थे (मन-ही-मन सोचते थे कि कहाँ तो भरत-सरीखे निःस्वार्थ प्रेमी भाई और कहाँ हम अपने बड़े भाइयोंको मरवानेवाले स्वार्थी भाई !) ॥२०८॥

भरत स्याम तन राम सम सब गुन रूप निधान।
सेवक सुखदायक सुलभ सुमिरत सब कल्यान ॥२०९॥

भावार्थ—श्रीभरतजीका श्रीरामजीके समान ही श्याम शरीर है और उन्हींके समान वे रूप गुणके खजाने तथा सेवकोंको सुख देनेवाले हैं। इनका स्मरण करते ही सब कल्याण सहज ही मिल जाते हैं ॥२०९॥

लक्ष्मणमहिमा

ललित लखन मूरति मधुर सुमिरहु सहित सनेह।
सुख संपति कीरति बिजय सगुन सुमंगल गेह ॥२१०॥

भावार्थ—जो सुख, सम्पत्ति, कीर्ति, विजय, सद्गुण और सुन्दर कल्याण के घर हैं, उन परम मनोहर श्रीलक्ष्मणजीकी मधुर मूर्तिका प्रेमसहित स्मरण करो ॥२१०॥

शत्रुघ्नमहिमा

नाम सत्रुसूदन सुभग सुषमा सील निकेत।
सेवत सुमिरत सुलभ सुख सकल सुमंगल देत ॥२११॥

भावार्थ—शोभा और शीलके धाम श्रीशत्रुघ्नजीके सुन्दर नामका भजन और स्मरण करनेसे सब सुख सुलभ हो जाते हैं और वह भजन स्मरण सब सुन्दर मङ्गलोंको देनेवाला है ॥२११॥

कौसल्यामहिमा

कौसल्या कल्यानमइ मूरति करत प्रनाम ।
सगुन सुमंगल काज सुभ कृपा करहिं सियराम ॥२१२॥

भावार्थ—श्रीकौशल्याजी कल्याणमयी मूर्ति हैं, उन्हें प्रणाम करनेपर सब शुभ सगुण और सुन्दर मङ्गल होते हैं और सब कार्य सफल होते है तथा श्रीसीतारामजी कृपा करते हैं ॥२१२॥

सुमित्रामहिमा

सुमिरि सुमित्रा नाम जग जे तिय लेहिं सनेम ।
सुअन लखन रिपुदवन से पावहिं पति पद प्रेम ॥२१३॥

भावार्थ—जगत्मे जो स्त्रियाँ सुमित्राजीके नामको स्मरणकर [पातिव्रत] नियम लेती हैं, वे लक्ष्मण और शत्रुघ्न-जैसे पुत्र तथा पतिके चरणोमे प्रेम प्राप्त करती हैं ॥२१३॥

सीतामहिमा

सीता चरन प्रनाम करि सुमिरि सुनाम सुनेम ।
होहिं तीय पतिदेवता प्राननाथ प्रिय प्रेम ॥२१४॥

भावार्थ—भलीभाँति नियमपूर्वक श्रीसीताजीके चरणोमें प्रणाम करनेसे और उनके सुन्दर नामका स्मरण करनेसे स्त्रियाँ पतिव्रता हो जाती हैं और अपने प्रिय प्राणनाथका प्रेम प्राप्त करती हैं ॥२१४॥

रामचरित्रकी पवित्रता

तुलसी केवल कामतरु रामचरित आराम ।
कलितरु कपि निसिचर कहत हमहिं किए बिधि बाम ॥२१५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि श्रीरामचरितरूपी बगीचेमें केवल कल्पवृक्ष ही हैं (अर्थात् उसमें केवल पुण्यपुरुषोंको ही

स्थान है)। सुग्रीवादि बदर और विभीषणादि राक्षस कहते हैं कि विधाता हमारे लिये विपरीत था जिसने हम लोगोको कलितरु (पाप-देह) बनाया, परतु कृपामय श्रीरघुनाथजीने हमे भी अपने उस चरित्ररूप पावन उद्यानमे स्थान दे दिया ॥२१५॥

कैकेयीकी कुटिलता

मातु सकल सानुज भरत गुरु पुर लोग सुभाउ ।
देखत देख न कैकइहि लंकापति कपिराउ ॥२१६॥

भावार्थ—लकेश्वर विभीषण और वानरराज सुग्रीव सब माताओका, लक्ष्मण और शत्रुघ्नसहित भरतजीका, गुरुओका तथा अयोध्यावासियोका [श्रीरामजीके प्रेमसे भरा हुआ] स्वाभाव [बड़े ही आदर तथा आह्लादके साथ] देखते हैं, परतु कैकेयीको (उसका राम-विरोधी स्वभाव) नही देख सकते (उसका वैसा स्वभाव देखकर उन्हे दु:ख होता है) ॥२१६॥

सहज सरल रघुबर बचन कुमति कुटिल करि जान ।
चलइ जोंक जल बक्रगति जद्यपि सलिलु समान ॥२१७॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजीके स्वभावसे ही सरल वचनोको दुर्बुद्धि-कैकेयीने टेढा ही समझा। यद्यपि जल समान ही होता है तथापि जोक उसमे टेढी चाल से ही चलती है ॥२१७॥

दशरथमहिमा

दसरथ नाम सुकामतरु फलइ सकल कल्यान ।
धरनि धाम धन धरम सुत सदगुन रूप निधान ॥२१८॥

भावार्थ—दशरथजीका नाम सुन्दर कल्पवृक्ष है; [सेवा करने-

पर यानी 'दशरथ' नामका जप करनेपर] उसमे पृथ्वी, घर, धन, धर्म, सदगुणी और रूपनिधान पुत्र—इस प्रकार सभी कल्याणमय फल फलते हैं ।। ।।२१८।।

तुलसी जान्यो दसरथहि धरमु न सत्य समान ।
रामु तजे जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान ।।२१९।।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि दशरथजीने ही इस तत्त्वको समझा था कि सत्यके समान कोई भी धर्म नही है। जिस सत्यके लिये उन्होने श्रीरामको त्याग दिया और श्रीरामके विरहमे प्राण त्याग दिये ।।२१९।।

राम बिरहँ दसरथ मरन मुनि मन अगम सुमीचु ।
तुलसी मंगल मरन तरु सुचि सनेह जल सींचु ।।२२०।।

भावार्थ—श्रीरामजीके विरहमे दशरथजी मर गये, ऐसी शुभ मृत्युतक मुनियोके मन भी नही पहुँच सकते। तुलसीदासजी कहते हैं, ऐसे मङ्गलमय मृत्युरूपी वृक्षको पवित्र (अनन्य और निष्काम) श्रीरामप्रेमरूपी जलसे सीचते रहो (अर्थात् श्रीराममे तुम्हारा प्रेम होगा तो तुम्हारी भी ऐसी ही दुर्लभ मृत्यु होगी) ।।२२०।।

सोरठा

जीवन मरन सुनाम जैसें दसरथ राय को ।
जियत खिलाए राम राम बिरहँ तनु परिहरेउ ।।२२१।।

भावार्थ—जीवन और मृत्यु दोनोमे ही जिस प्रकार महाराज दशरथजीका नाम हुआ (वैसा किसीके लिये भी सम्भव नही है)। जीवनकालमे उन्होने भगवान श्रीरामको गोद खिलाया और शरीर छोड़ा तो श्रीरामके बिरहमें ।।२२१।।

जटायुका भाग्य

दोहा

प्रभुहि विलोकत गोद गत सिय हित घायल नीचु।
तुलसी पाई गीधपति मुकुति मनोहर मीचु ॥२२२॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि गृध्रराज जटायुको धन्य हैं, जो सीताके [छुड़ाने] के लिये घायल हुए और नीच शरीर होनेपर भी प्रभुकी गोदमे उनके मधुर मुखारविन्दको निरखते हुए ही मनोहर मृत्यु और मुक्ति प्राप्त की ॥२२२॥

विरत करम रत भगत मुनि सिद्ध ऊँच अरु नीचु।
तुलसी सकल सिहात सुनि गीधराज की मीचु ॥२२३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि गृध्रराजकी (इस प्रकारकी दुर्लभ) मृत्युका समाचार सुनकर विरक्त, कर्मयोगी, भक्त, ज्ञानी, मुनि, सिद्ध, ऊँच और नीच—सभी उनकी ईर्ष्या करने लगे (सबने चाहा कि हमे भी ऐसी ही मृत्यु मिले ॥२२३॥

मुए मरत मरिहैं सकल घरी पहरके बीचु।
लही न काहूँ आजु लौं गीधराज की मीचु ॥२२४॥

भावार्थ—आजतक कितने मर गये, वर्तमानमे कितने मर रहे हैं और भविष्यमें घड़ी-पहरके अन्तरसे सभी मरेंगे ही; परतु आजतक जटायुकीसी सुन्दर मौत किसीने नही पायी ॥२२४॥

मुएँ मुकुत जीवत मुकुत मुकुत मुकुत हूँ बीचु।
तुलसी सबही तें अधिक गीधराजकी मीचु ॥२२५॥

भावार्थ—कोई मरनेपर मुक्त होता है, कोई जीता ही मुक्त (जीवन्मुक्त) हो जाता है; मुक्त-मुक्तमे भी भेद होता है। तुलसी-

दासजी कहते हैं, इन सभी मुक्तियोसे वढकर गृध्रराजकी मृत्यु हुई ॥२२५॥

रघुबर बिकल बिहंग लखि सो बिलोकि दोउ बीर।
सिय सुधि कहि सिय राम कहि देह तजी मति धीर ॥२२६॥

भावार्थ—श्रीरघुनाथजीने [पीडासे] व्याकुल [घायल] जटायु-को देखा, उस धीरबुद्धि जटायुने भी दोनो भाइयोको [नेत्र भरकर] देखा [देखते ही पीडामुक्त होकर] उन्हें सीताजीका समाचार सुनाकर, 'सीताराम', 'सीताराम' कहते हुए [और भगवान्‌को देखते हुए ही उनकी गोदमे] शरीर छोड दिया ॥२२६॥

दसरथ तें दसगुन भगति सहित तासु करि काजु।
सोचत बंधु समेत प्रभु कृपासिंधु रघुराजु ॥२२७॥

भावार्थ—कृपाके समुद्र श्रीरघुनाथजीने अपने पिता दशरथजीसे दसगुनी भक्तिसहित उसका मृतकसस्कार किया और भाई लक्ष्मणजी-सहित उसकी मृत्युके लिये शोक करने लगे ॥२२७॥

रामकृपाकी महत्ता

केवट निसिचर बिहग मृग किए साधु सनमानि।
तुलसी रघुबर की कृपा सकल सुमंगल खानि ॥२२८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि श्रीरघुनाथजीकी कृपा सब सुमङ्गलोंकी खान है; उस रामकृपाने केवट, राक्षस (विभीषण), पक्षी (जटायु) और पशुओ (वदर-भालु आदि) को भी सम्मान देकर साधु वना दिया ॥२२८॥

हनुमत्स्मरणकी महत्ता

मंजुल मंगल मोदमय मूरति मारुत पूत।
सकल सिद्धि कर कमल तल सुमिरत रघुबर दूत ॥२२९॥

भावार्थ—श्रीरामजीके दूत वायुपुत्र श्रीहनुमान्‌जी मनोहर मङ्गल आनन्दकी मूर्ति हैं। उनका स्मरण करते ही समस्त सिद्धियाँ लगत (सुलभ) हो जाती हैं ॥ २२९ ॥

धीर बीर रघुबीर प्रिय सुमिरि समीर कुमारु।
अगम सुगम सब काज करु करतल सिद्धि बिचारु ॥२३०॥

भावार्थ—धीर, वीर श्रीरघुवीरके प्यारे पवनकुमार श्रीहनुमान्‌- ि स्मरण करके चाहे जैसे दुर्लभ या सुलभ सब काम करो; वा रक्खो कि उनकी सफलता तुम्हारे हाथमे ही रक्खी है ॥२३०॥

सुख मुद मंगल कुमुद बिधु सुगुन सरोरुह भानु।
करहु काज सब सिद्धि सुभ आनि हिएँ हनुमान ॥२३१॥

भवार्थ—सुख, आनन्द और मङ्गलरूपी कुमुदिनीके खिलानेके ा न्द्रमाके सदृश और सुन्दर गुणरूपी कमलोको विकसित नेकेलिये सूर्यके समान श्रीहनुमानजीका हृदयमे ध्यान करके कार्य ्म्भकरो; फिर सब शुभ और सिद्ध ही होगा ॥ २३१ ॥

सकल काज सुभ समउ भल सगुन सुमंगल जानु।
कीरति बिजय बिभूति भलि हियँ हनुमानहि आनु ॥२३२॥

भवार्थ—श्रीहनुमानजीका हृदयमे ध्यान करो और यह निश्चय म्न लो कि तुम्हारे सभी कार्य शुभ होगे, दिन अच्छे आवेंगे, ो सगुण, सुमङ्गल, कीर्ति, विजय और विमल विभूतिकी प्राप्ति ो ॥२३२ ॥

सूर सिरोमनि साहसी सुमति समीर कुमार।
सुमिरत सब सुख संपदा मुद मंगल दातार ॥२३३॥

भावार्थ—शूरोके शिरोमणि, साहसी, सुबुद्धिमान् श्रीपवनकुमार

स्मरण करते ही स्मरण करनेवालेको सब सुख, सम्पत्ति, आनन्द और मङ्गल देनेवाले हैं ॥ २३३ ॥

बाहुपीड़ाकी शान्तिके लिये प्रार्थना

तुलसी तनु सर सुख जलज भुज रुज गज बरजोर।
दलत दयानिधि देखिए कपि केसरी किसोर* ॥२३४॥

भावार्थ—हे दयानिधान हनुमान्‌जी ! देखिये, तुलसीदासके शरीररूपी सरोवरके सुखरूपी कमलको यह भुजाका रोगरूप हाथी बलपूर्वक नष्ट कर रहा है। [इससे मुझको बचाइये; क्योंकि] आप केसरीनन्दन है (सिंहका* बच्चा ही मतवाले हाथीको परास्त कर सकता है) ॥ २३४ ॥

भुज तरु कोटर रोग अहि बरबस कियो प्रबेस।
बिहगराज बाहन तुरत काढ़िअ मिटै कलेस ॥२३५॥

भावार्थ—मेरी भुजा पेडके कोटरके समान है, उसमें रोगरूपी सर्प जबर्दस्ती घुस गया है। हे गरुडवाहन हरि ! उसे आप शीघ्र निकाल डालिये, जिससे मेरा कष्ट दूर हो ॥ २३५ ॥

बाहु बिटप सुख बिहँग थलु लगी कुपीर कुआगि
रामकृपा जल सींचिए बेगि दीन हित लागि ॥२३६॥

भावार्थ—मेरा भुजारूपी वृक्ष सुखरूपी पक्षीका निवसस्थान था, उसमे दुष्ट रोगरूपी बुरी आग लग गयी है। हे हनुमान्‌जी ! शीघ्र ही इस दीनके भलेके लिये श्रीरामकृपारूपी जल सीचकर उस आगको बुझा दीजिये (क्योंकि रामकृपा आपके ही अधीन है) ॥ २३६ ॥

---

*तुलसीदासजीकी बाँहमे रोग हो गया था, श्रीहनुमान्‌जीकी स्तुतिसे वह अच्छा हो गया था। ये दोहे उसी प्रसङ्गके कहे जाते हैं।

*केसरी हनुमानजीके पिताका नाम था और केसरी सिंहको भी कहते हैं।

काशीमहिमा

सोरठा

मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानिकर ।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न ॥२३७॥

भावार्थ—जहाँ भगवान् श्रीशिवजी और माता पार्वतीजी रहते हैं; उस काशीको पापोको नष्ट करनेवाली, ज्ञानकी खान और मुक्तिको उत्पन्न करनेवाली जानकर क्यो न उसका सेवन किया जाय ?॥२३७॥

शंकरमहिमा

जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किय ।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपालु संकर सरिस ॥२३८॥

भावार्थ—जिस भयकर विष [की ज्वाला] से सारे देवतागण जल रहे थे, उसको जिन्होने स्वय पान कर लिया, रे मन्द मन ! तू उन श्रीशिवजीको क्यो नही भजता ? उनके समान, कृपालु [और] कौन है ? ॥२३८॥

शंकरजीसे प्रार्थना

दोहा

बासर ढासनि के ढका रजनीं चहुँ दिसि चोर ।
संकर निज पुर राखिऐ चितै सुलोचन कोर ॥२३९॥

भावार्थ—दिनमे तो मुझे ठगोके धक्के खाने पडते है और रातको मुझे चारो ओरसे चोर सताते है, अतएव हे शकरजी ! कृपादृष्टि-की कोरसे मेरी ओर देखकर अपनी काशीपुरीमे इनसे मेरी रक्षा कीजिये ॥२३९॥

अपनी बीसीं आपुहीं पुरिहिं लगाए हाथ ।
केहि बिधि बिनती बिस्व की करौं बिस्व के नाथ ॥२४०॥

भावार्थ—हे विश्वनाथजी! आपने अपनी 'वीसी'* मे स्वय अपनी पुरीमे कार्य आरम्भ कर दिया (सहारलीला शुरू कर दी), फिर मैं विश्वकी ओरसे किस प्रकार आपसे [उसकी रक्षाके लिये] विनय करूँ ? ॥२४०॥

भगवल्लीलाकी दुर्ज्ञेयता

और करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु ।
अति बिचित्र भगबंत गति को जग जानै जोगु ॥२४१॥

भावार्थ—अपराध करे कोई और और उसके फलका भोग पावे कोई और ही । भगवान्‌की लीला अति विचित्र है, उसे जानने योग्य जगत्‌मे कौन है (अर्थात् कोई नही) ॥२४१॥

प्रेममें प्रपंच बाधक है

प्रेम सरीर प्रपंच रुज उपजी अधिक उपाधि ।
तुलसी भली सुबैदई बेगि बाँधिऐ ब्याधि ॥२४२॥

भावार्थ—प्रेमरूपी शरीरमे यदि विषयाशक्तिका रोग लग जाता है तो बड़ी भारी पीडा उत्पन्न हो जाती है । तुलसीदासजी कहते हैं कि अच्छी वैद्यता इसीमे है कि व्याधि को तुरंत रोक दिया जाय (यानी विषयासक्ति आने ही न दे) ॥२४२॥

अभिमान ही बन्धनका मूल है

हम हमार आचार बड़ भूरि भार धरि सीस ।
हठि सठ परबस परत जिमि कीर कोस कृमि कीस ॥२४३॥

---

*विंशति—वीसी एक ग्रहदशा होती है । रुद्रकी वीसीमे सहार ही अधिक हुआ करता है । कहते हैं एक वार तुलसीदासजीके समयमे काशीमे बड़ी भारी महामारी फैल गयी थी । यह दोहा उसी समयका बतलाया जाता है ।

भावार्थ—'हम बडे हैं और हमारा आचार श्रेष्ठ है' ऐसे अभिमान-का भारी बोझ सिरपर रखकर मूर्खलोग तोते, रेशमके कीडे और बंदरकी तरह् बलात्कारसे पराधीन हो जाते है* ॥२४३॥

जीव और दर्पणके प्रतिबिम्बकी समानता

केहिं मग प्रविसति जाति केहिं कहु दरपन मे छाहँ।
तुलसी ज्यों जग जीव गति करी जीव के नाहँ ॥२४४॥

भावार्थ—भला बतलाओ तो दर्पणमे छाया किस रास्तेसे घुसती है और किस रास्तेसे निकल जाती है ? तुलसीदासजी कहते हैं कि जीवोके नाथ परमात्माने ससारमें जीवोकी भी ऐसी ही चाल बनायी है (कौन किस रास्तेसे कहाँसे आता है और किस मार्गसे कहाँ चला जाता है, इस बातको कोई नही बतला सकता) ॥२४४॥

भगवन्मायाकी दुर्ज्ञेयता

सुखसागर सुख नींद बस सपने सब करतार।
माया मायानाथ की को जग जाननिहार ॥२४५॥

भावार्थ—सुखसागर परमात्मा ही जीवके रूपमे सुखकी नीद सो रहे हैं और स्वप्नवत् सब काम कर रहे है। मायाके स्वामीकी इस मायाको जाननेवाला जगत्में कौन है ? ॥२४५॥

*तोता फिरनेवाली लकडीपर बैठकर लकडी घूमते ही उलट जाता है और पजोंसे लकडीको पकडे रखकर बचनेको चेष्टा मानता है और पकडा जाता है। रेशमका कीडा आप ही कोश बनाकर उसमे बध जाता है और मारा जाता है। इसी प्रकार बदर छोटे मुंहकी हँडियामे चनेके लोभसे हाथ डालकर चने मुट्ठीमें भरकर मुट्ठी बद कर लेता है, चनोंकि लालचसे मुट्ठी खोलता नहीं और फलस्वरूप पकडा जाता है।

जीवकी तीन दशाएँ

जीव सीव सम सुख सयन सपनें कछु करतूति ।
जागत दीन मलीन सोइ बिकल बिषाद बिभूति ॥२४६॥

भावार्थ—जीव सुखसे सोनेके समय (सुपुप्तिमें) शिव (परमात्मा) के समान है, स्वप्नमे कुछ कार्य करता हैं (अनेक प्रकारकी सृष्टि रचता है) और जागतेमे (जाग्रदवस्थामे) वही दीन-मलीन हो जाता है और विषाद (अनेक प्रकारके शोक) की सम्पत्ति (सामग्री) से व्याकुल रहता है ॥२४६॥

सृष्टि स्वप्नवत् है

सपने होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ ।
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ ॥२४७॥

भावार्थ—स्वप्नमें राजा भिखारी हो जाता है और कगाल इन्द्र हो जाता है। परंतु जागनेपर लाभ या हानि कुछ भी नही होती। वैसे ही इस विपयरूप ससारको भी हृदयसे [स्वप्नवत्] देखो ॥२४७॥

हमारी मृत्यु प्रतिक्षण हो रही है

तुलसी देखत अनुभवत सुनत न समुझत नीच ।
चपरि चपेटे देत नित केस गहें कर मीच ॥२४८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि रे नीच! हाथोसे तेरी चोटी पकड़कर मृत्यु नित्य ही झपटकर तेरे चपत जमा रही है। यह दशा देखकर, सुनकर और अनुभव करके भी तू नही समझता। [प्रतिक्षण शरीरका क्षय हो रहा है, यह देखते-सुनते हुए भी जीव अपनी मौतको भुलाकर विषय-सेवनमें ही लगा रहता है। उसीको चेतावनी देते हैं] ॥२४८॥

कालकी करतूत

करम खरी कर मोह थल अंक चराचर जाल ।
हनत गुनत गनि गुनि हनत जगत ज्यौतिषी काल ।।२४९।।

भावार्थ—जगत्मे कालरूपी ज्योतिषी हाथमे कर्मरूपी हड़िया
र मोहरूपी पट्टीपर चराचर जीवरूपी अङ्कोको मिटाता है, हिसाव
ाता है, फिर गिन-गिनकर मिटाता है ।। २४९ ।।

इन्द्रियोंकी सार्थकता

कहिबे कहँ रसना रची सुनिबे कहँ किए कान ।
धरिबे कहँ चित हित सहित परमारथहि सुजान ।।२५०।।

भावार्थ—चतुर परमात्माने परमार्थ (भगवच्चर्चा) कहनेके लिये
म वनायी, भगवद्गुणानुवाद सुननेके लिये कान रचे और प्रेमसहित
वान्‌का ध्यान धरनेके लिये चित्त वनाया ।। २५० ।।

सगुणके बिना निर्गुणका निरूपण असम्भव है

ग्यान कहै अग्यान बिनु तम बिनु कहै प्रकास ।
निरगुन कहै जो सगुन बिनु सो गुरु तुलसीदास ।।२५१।।

भावार्थ—जो अज्ञानका कथन किये विना ज्ञानका प्रवचन करे,
न्धकारका ज्ञान कराये विना ही प्रकाशका स्वरूप वतला दे और
णको समझाये विना ही निर्गुणका निरूपण कर दे, तुलसीदासजी
ते है कि वह मेरा गुरु है (तात्पर्य यह है कि अज्ञानके विना ज्ञान,
न्धकारके विना प्रकाश और सगुणके विना निर्गुणकी सिद्धि नही हो
ती; निर्गुण कहते ही सगुणकी सिद्धि हो जाती है। अतएव जो
णोपासना छोडकर निर्गुणोपासना करना चाहते हैं, उनको यथार्थ
ुणतत्त्वका ज्ञान होना वहुत ही कठिन है) ।। २५१ ।।

निर्गुणकी अपेक्षा सगुण अधिक प्रामाणिक है

अंक अगुन आखर सगुन समुझिअ उभय प्रकार।
खोएँ राखें आपु भल तुलसी चारु बिचार ॥२५२॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि निर्गुण ब्रह्म (१, २, ३) अङ्कके समान है और सगुण भगवान् अक्षर (एक, दो, तीन) के समान हैं, अब दोनो प्रकारोंको समझना चाहिये और फिर किसके न रखनेसे और किसके रखनेसे अपना कल्याण है, इस बातको भी भलीभाँति विचारना चाहिये (व्यापारी लोग हुडीमे पहले अङ्कोंमें सख्या-जैसे १०००) लिखकर फिर अक्षरोमें—'अखरे एक हजार' ऐसा लिख देते हैं। दोनों ही ठीक है, परतु अक्षरोंमे लिख देनेसे न तो किसी तरहका भ्रम रह सकता है और न एक शून्य घटा-बढाकर कोई हजारको सौ या दस हजार ही बना सकता है। इसी प्रकार निर्गुण और सगुण दोनों सत्य हैं, एक ही दो रूपोंमे हैं; परतु निर्गुणकी अपेक्षा सगुण अधिक प्रामाणिक है। निर्गुणमे तो किसी तरहका भ्रम भी रह सकता है परतु सगुणमें न तो कोई भ्रम रह सकता है और न किसी प्रकारसे कोई छल ही चल सकता है।) ॥२५२॥

विषयासक्तिका नाश हुए बिना ज्ञान अधूरा है

परमारथ पहिचानि मति लसति बिषयँ लपटानि।
निकसि चिता तें अधजरित मानहुँ सती परानि ॥२५३॥

भावार्थ—परमार्थ (सत्य वस्तु) की पहचान हो जानेपर भी विषयोंमें लिपटी हुई बुद्धि ऐसी लगती है, मानो चितासे निकलकर भागी हुई कोई अधजली सती हो ॥२५३॥

विषयासक्त साधुकी अपेक्षा वैराग्यवान् गृहस्थ अच्छा है

सीस उघारन किन कहेउ बरजि रहे प्रिय लोग ।
घरहीं सती कहावती जरती नाह वियोग ॥२५४॥

भावार्थ—अधजली भागनेवाली ऐसी सतीको सिर खोलनेके लिये किसने कहा था ? प्यारे सगे-सम्बन्धी तो सब रोक रहे थे। इससे तो यही अच्छा था कि स्वामीके वियोगकी अग्निमे सदा जला करती और घर बैठी ही सती कहलाती। (तात्पर्य यह है कि साधु होकर फिर विषयोकी ओर ललचानेसे तो घर बैठे भजन करना ही अच्छा है।)॥२५४॥

साधुके लिये पूर्ण त्यागकी आवश्यकता

खरिया खरी कपूर सब उचित न पिय तिय त्यागि ।
कै खरिया मोहि मेलि कै बिमल बिबेक बिराग ॥२५५॥

भावार्थ—[कहते है कि साधु होनेके बाद तुलसीदासजीको एक दिन उनकी स्त्री मिल गयी। स्त्रीने उनकी झोलीमे खरी (सफेद गोपीचन्दन) और कपूर आदि देखकर कहा कि] हे प्रियतम ! जब आप अपनी झोलीमे खरी और कपूर आदि सब सामान रखते हैं, तब स्त्रीका त्याग उचित नही है। अतएव या तो मुझको भी इस झोलीमें डाल लीजिये, अथवा विशुद्ध ज्ञान और वैराग्यको धारण कीजिये। [कहते हैं कि उसी क्षणसे तुलसीदासजीने झोली-झडा फेंक दिया। यह दोहा वास्तवमें सभी विरक्त-वेषधारी पुरुषोके लिये चेतावनी-स्वरूप है] ॥२५५॥

भगवत्प्रेममें आसक्ति बाधक है, गृहस्थाश्रम नहीं

घर कीन्हें घर जात है घर छाँड़े घर जाइ।
तुलसी घर बन बीचहीं राम प्रेम पुर छाइ ॥२५६॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि घर करनेसे (गृहस्थीमें रहनेसे) अपना असली घर (परलोक) नष्ट हो जाता है और घर छोड़नेसे (सन्यास ग्रहण करनेसे) यहाँका घर (गृहस्थी) नष्ट होता है। अतएव तू घर और वनके बीचमे ही (अर्थात् घरहीमें गृहत्यागी-की भाँति रहकर) श्रीरामजीके प्रेमकी पुरी बसा ॥२५६॥

संतोषपूर्वक घरमें रहना ही उत्तम है

दिएँ पीठि पाछें लगै सनमुख होत पराइ।
तुलसी संपति छाँह ज्यों लखि दिन बैठि गँवाइ ॥२५७॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि संपत्ति शरीरकी छायाके समान है। इसकी पीठ देखकर चलनेसे यह पीछे-पीछे चलती है और सामने होकर चलनेसे दूर भाग जाती है। (जो धनसे मुंह मोड लेता है, धनकी नदी उसके पीछे-पीछे बहती चली आती है; और जो धनके लिये सदा ललचाता रहता है, उसे सपनेमें भी पैसा नही मिलता।) इस बातको समझकर घर बैठकर ही दिन विताओ (अर्थात् सतोपसे रहो और भगवान्‌का भजन करो) ॥२५७॥

विषयोंकी आशा ही दुःखका मूल है

तुलसी अद्‌भुत देवता आसा देवी नाम।
सेयें सोक समर्पई बिमुख भएँ अभिराम ॥२५८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि आशादेवी नामकी एक अद्भुत देवी है; यह सेवा करनेपर तो शोक (दुःख) देती है और इससे विमुख होनेपर सुख मिलता है ॥२५८॥

मोह-महिमा

सोई सेंवर तेइ सुवा सेवत सदा बसंत।

तुलसी महिमा मोह की सुनत सराहत संत ॥२५९॥

भावार्थ—वही सेमलका पेड़ है और वही तोते है (वार-वार अनुभव कर चुके है कि इसके फलमे गूदा नही होता), तो भी मोह-वश वसन्त ऋतु आनेपर सदा उसीपर मँडराये रहते हैं। (चोच मारते हैं, रुई उड़ जाती है, हाथ कुछ भी नही आता।) तुलसी-दासजी कहते हैं कि इस वातको सुनकर सतलोग भी मोहकी महिमाकी सराहना करते हैं ॥२५९॥

विषय-सुखकी हेयता

करत न समुझत झूठ गुन सुनत होत मति रंक।

पारद प्रगट प्रपंचमय सिद्धिउ नाऊँ कलंक ॥२६०॥

भावार्थ—[वार-वार धोखा खानेपर भी] विपयी मनुष्य विपयोके लिये चेष्टा करते हुए यह नही समझते कि इनमे कही भी सुख नही है; विषयोके झूठे गुणोको सुनते ही उनकी बुद्धिका दिवाला निकल जाता है (उनका मन विषयोके लिये ललचा उठता है)। यह प्रपञ्चमय विषय-सुख प्रत्यक्ष पारेके समान है, जिसके सिद्ध होनेपर भी उसका नाम 'कलङ्क' ही होता है ॥२६०॥

लोभकी प्रबलता

ग्यानी तापस सूर कवि कोविद गुन आगार।

केहि कै लोभ विडंबना कीन्हि न एहिं संसार ॥२६१॥

भावार्थ—ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर, कवि, पण्डित और गुणोका धाम इस संसारमे ऐसा कौन मनुष्य है, जिसकी लोभने मिट्टी पलीद न की हो? ॥२६१॥

धन और ऐश्वर्यके मद तथा कामकी व्यापकता

श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि ॥२६२॥

भावार्थ—धनके मदने किसको टेढा नही कर दिया, प्रभुताने किसको बहरा नही बना दिया और मृगलोचनी (सुन्दर स्त्री) के नयन-बाण ऐसा कौन है, जिनको नही लगे ? ॥२६२॥

मायाकी फौज

ब्यापि रहेउ संसार महुँ माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट दंभ कपट पाषंड ॥२६३॥

भावार्थ—मायाकी प्रचण्ड सेना ससारभरमें फैल रही है, कामादि (काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मत्सर) वीर इस सेनाके सेनापति हैं और दम्भ, कपट, पाखण्ड उसके योद्धा हैं ॥२६३॥

काम, क्रोध, लोभकी प्रबलता

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ ॥२६४॥

भावार्थ—हे तात! काम, क्रोध और लोभ—ये तीन दुष्ट बड़े ही बलवान् है, ये विज्ञानसम्पन्न मुनिके मनमे भी पलक मारते-मारते क्षोभ उत्पन्न कर देते है ॥२६४॥

काम, क्रोध, लोभके सहायक

लोभ कें इच्छा दंभ बल काम कें केवल नारि।
क्रोध कें परुष बचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि ॥२६५॥

भावार्थ—श्रेष्ठ मुनि विचारकर कहते हैं कि लोभके इच्छा और

दम्भका बल है, कामके केवल कामिनीका बल है और क्रोधके कठोर वचनका बल है ॥२६५॥

मोहकी सेना

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि ।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ॥२६६॥

भावार्थ—काम, क्रोध, मद और लोभ आदि मोहकी प्रबल सेना है। इनमें स्त्री जो माया की साक्षात् मूर्ति है, वह तो बहुत ही भयानक दु.ख देनेवाली है ॥२६६॥

अग्नि, समुद्र, प्रबल स्त्री और कालकी समानता

काह न पावक जारि सक का न समुद्र समाइ ।
का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ ॥२६७॥

भावार्थ—अग्नि क्या नही जला सकती ? समुद्रमे कौन वस्तु नही डूब सकती प्रबल होनेपर अबला कहलानेवाली स्त्री क्या नही कर सकती ? और जगत्मे काल किसको नही खाता ? ॥२६७॥

स्त्री झगड़े और मृत्युकी जड़ है.

जनमपत्रिका बरति कै देखहु मनहिं बिचारि ।
दारुन बैरी मीचु के बीच बिराजति नारि ॥२६८॥

भावार्थ—जन्मकुण्डलीको व्यवहारमे लाकर मनमे विचारकर देखो कि स्त्री भयकर वैरीके और मृत्युके बीचके स्थानमे विराज रही है (कुण्डलीके बाहर स्थानोंमे छठा शत्रुका और आठवां मृत्युका माना जाता है। इनके बीचमे स्त्रीका स्थान सातवां है। जगत्मे स्त्रियोंके कारण न मालूम कितने लोगोमे शत्रुता और कितनोंकी मृत्यु हुई है।) ॥२६८॥

उद्बोधन

दीपसिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग ।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग ॥२६९॥

भावार्थ—युवती स्त्रियोका [सुन्दर] शरीर दीपककी लौके समान है, मन! तू उसमे पतग मत बन [नही तो भस्म हो जायगा]। काम और मदको त्यागकर श्रीरामका भजन कर और सदा सत्सङ्ग कर ॥२६९॥

गृहासक्ति श्रीरघुनाथजीके स्वरूपकेज्ञानमें बाधक है

काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप ।
ते किमि जानहि रघुपतिहि मूढ़ परे भव कूप ॥२७०॥

भावार्थ—जो काम, क्रोध, मद और लोभके परायण हैं और जो दुःखरूप गृहमे ही आसक्त हैं, वे संसाररूपी कुएँमें पड़े हुए मूढ़ श्रीरघुनाथजीको कैसे जान सकते हैं ? ॥२७०॥

काम-क्रोधादि एक-एक अनर्थकारक हैं, फिर सबकी तो बात ही क्या ?

ग्रह ग्रहीत पुनि बातबस तेहि पुनि बीछी मार ।
तेहि पियाइअ बारुनी कहहु काह उपचार ॥२७१॥

भावार्थ—जिसे कुग्रह लगे हों [अथवा जो पिशाचग्रस्त हो] फिर जो वायुरोगसे पीड़ित हो और उसीको फिर बिच्छू डंक मार दे, ऐसे तीन प्रकारसे पागल बने हुएको ऊपरसे शराब पिला दी जाय तो कहिये, यह कैसा इलाज है? ॥२७१॥

किसके मनको शान्ति नहीं मिलती ?

ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिश्राम ।
भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम ॥२७२॥

भावार्थ—जो मनुष्य मोहके वशीभूत होकर भूतप्राणियोंके द्रोहमें तत्पर है, श्रीरामसे विमुख है और भोगोंमे आसक्त हो रहा है; उसको क्या स्वप्नमे भी [दैवी] सम्पत्ति, शुभ शकुन या चित्तकी शान्ति प्राप्त हो सकती है ? ॥२७२॥

ज्ञानमार्गकी कठिनता

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक ।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक ॥२७३॥

भावार्थ—ज्ञान कहने (समझाने) मे कठिन है, समझनेमें कठिन है और साधन करनेमे भी कठिन है। यदि 'घुणाक्षर' न्यायसे* कहीं ज्ञान प्राप्त भी हो जाय तो फिर भी उस [के बचाये रखने] मे अनेकों विघ्न आते रहते हैं। (तात्पर्य यह है कि कहीं गुरुकृपासे परोक्ष ज्ञान हो ही जाता है, तो फिर भी अपरोक्षतक पहुँचनेमे बहुत-सी बाधाएँ आती हैं) ॥२७३॥

भगवद्भजनके अतिरिक्त और सब प्रयत्न व्यर्थ हैं

खल प्रबोध जग सोध मन को निरोध कुल सोध ।
करहिं ते फोटक पचि मरहिं सपनेहुँ सुख न सुबोध ॥२७४॥

---

*काठमे जब घुन लग जाता है और उसे काटता है, तब उसमें कई तरहकी रेखाएँ बन जाती हैं। संयोगसे कोई रेखा अक्षर-जैसी बन जाय तो उसे 'घुणाक्षर' कहते हैं। इसी प्रकार बिना प्रयत्नके संयोगवश कोई घटना हो जाय तो उसे 'घुणाक्षर-न्याय' कहते हैं।

भावार्थ—जो लोग दुष्टोंको ज्ञानका उपदेश देना, संसारका सुधार करना, मनका निरोध करना और कुलको शुद्ध करना चाहते हैं, वे व्यर्थ ही परिश्रम करते हुए मर जाते हैं; उन्हे स्वप्नमें भी सुख या सुन्दर ज्ञान नही मिलता। [अतएव इन सब कार्योंके पीछे न पड़कर सतोषपूर्वक श्रीभगवान्‌का भजन करना चाहिये] ॥२७४॥

संतोषकी महिमा

सोरठा

कोउ बिश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ ॥२७५॥

भावार्थ—स्वाभाविक संतोषके विना क्या कोई शान्ति पा सकता है? चाहे करोड़ों प्रकारसे जतन करते-करते कोई मर जाय, परन्तु जलके बिना सूखी जमीनपर क्या कभी नाव चल सकती है? ॥२७५॥

मायाकी प्रबलता और उससे तरनेका उपाय

सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन माहिं भजिअ महामाया पतिहि ॥२७६॥

भावार्थ—जिसे भगवान्‌की प्रवल माया मोहित न कर दे ऐसा देवता, मनुष्य अथवा मुनि कोई भी नही है। यों मनमे विचारकर उस महामायाके स्वामी (प्रेरक) श्रीरामका भजन करना चाहिये ॥२७६॥

गोस्वामीजीकी अनन्यता

दोहा

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास ॥२७७॥

भावार्थ—एक ही भरोसा है, एक ही बल है, एक ही आशा है और एक ही विश्वास है। एक रामरूपी श्यामघन (मेघ) के लिये ही तुलसीदास चातक बना हुआ है ॥२७७॥

प्रेमकी अनन्यताके लिये चातकका उदाहरण

जौं घन बरषै समय सिर जौं भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस ॥२७८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि हे रामरूपी मेघ! चाहे तुम ठीक समयपर बरसो (कृपाकी दृष्टि करो) चाहे जन्मभर उदासीन रहो—कभी न बरसो, परंतु इस चित्तरूपी चातकको तो तुम्हारी ही आशा है ॥२७८॥

चातक तुलसीके मतें स्वातिहुँ पिऐ न पानि।
प्रेम तृषा बाढ़ति भली घटें घटैगी आनि ॥२७९॥

भावार्थ—हे चातक! तुलसीदासके मतसे तो तू स्वाति नक्षत्रमे बरसा हुआ जल भी न पीना! क्योंकि प्रेमकी प्यासका बढते रहना ही अच्छा है; घटनेसे तो प्रेमकी निष्ठा ही घट जायगी ॥२७९॥

रटत रटत रसना लटी तृषा सूखि गे अंग।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग ॥२८०॥

भावार्थ—अपने प्यारे मेघका नाम रटते-रटते चातककी जीभ लट गयी और प्यासके मारे सब अङ्ग सूख गये। तुलसीदासजी कहते है कि तो भी चातकके प्रेमका रग तो नित्य नया और सुन्दर ही होता जाता है ॥२८०॥

चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोष।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख ॥२८१॥

भावार्थ—चातकके चित्तमें अपने प्रियतम मेघका दोष कभी आता ही नही। तुलसीदासजी कहते है कि इसीलिये प्रेमके अथाह समुद्रका कोई माप-तौल नही हो सकता (उसका थाह नही लगाया जा सकता) ॥२८१॥

बरषि परुष पाहन पयद पंख करौ टुक टूक ।
तुलसी परी न चाहिऐ चतुर चातकहि चूक ॥२८२॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मेघ (बादल) कठोर ओले बरसाकर भले ही चातककी पाँखोके टुकड़े-टुकड़े कर दे, पर प्रेमके प्रणमें चतुर चातकको अपने प्रेमका प्रण निबाहनेमे कभी भूल नही करनी चाहिये ॥२८२॥

उपल बरषि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर ।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर ॥२८३॥

भावार्थ—मेघ कडक-कड़ककर गर्जता हुआ ओले बरसाता है और कठोर बिजली भी गिरा देता है; इतनेपर भी प्रेमी पपीहा मेघको छोड़कर क्या कभी किसी दूसरी ओर ताकता है ? ॥२८३॥

पबि पाहन दामिनि गरज झरि झकोर खरि खीझि ।
रोष न प्रीतम दोष लखि तुलसी रागहि रीझि ॥२८४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि मेघ बिजली गिराकर, ओले बरसाकर, बिजली चमकाकर, कड़क-कड़ककर, वर्षाकी झड़ी लगाकर और आँधीके झकोरे देकर अपना बड़ा भारी रोष प्रकट करता है; परंतु चातकको अपने प्रियतमका दोष देखकर क्रोध नहीं होता (उसे दोष दीखता ही नही), बल्कि इसमें भी वह अपने प्रति मेघका अनुराग देखकर उसपर रीझ जाता है ॥२८४॥

मान राखिबो माँगिबो पिय सों नित नव नेहु ।
तुलसी तीनिउ तव फवैं जौं चातक मत लेहु ॥२८५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि आत्मसम्मानकी रक्षा करना, माँगना और फिर भी प्रियतमसे प्रेमका नित्य नवीन होना (बढना)—ये तीनो वातें तभी शोभा देती हैं जव चातकके मतका अनुसरण किया जाय ॥ २८५ ॥

तुलसी चातक ही फवै मान राखिबो प्रेम ।
बक्र बुंद लखिस्वातिहू निदरि निवाहत नेम ॥२८६॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है, प्रेमके मानकी रक्षा करना और प्रेमको भी निवाहना चातकहीको शोभा देता है। स्वाती नक्षत्र-मे भी यदि वूंद [मेघकी ओर निहारते हुए उसके मुखमे सीधी न पड़कर] टेढी पड़ती है तो वह उसका निरादर करके प्रेमके नियमको निबाहता है (चोचको टेढी करनेमे दूसरी ओर ताकना हो जायगा और इससे उसके प्रेममे व्यभिचार होगा, इसलिये वह प्यासा रह जाता है, परंतु मुंह टेढ़ा नही करता। दूसरी वात यह है कि वह टेढी चोच करके पीता है तो उसका मान घटता है, वह मांगता नही है, प्रेमी है; देना हो तो सीधे दो, नही तो न सही) ॥ २८६ ॥

तुलसी चातक माँगनो एक एक घन दानि ।
देत जो भू भाजन भरत लेत जो घूंटक पानि ॥२८७॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि चातक एक ही (अद्वितीय) माँगनेवाला है और वादल भी एक ही (अद्वितीय) दानी है। वादल इतना देता है कि पृथ्वीके सव वर्तन (झील, तालाव आदि) भर जाते है; परंतु चातक केवल एक घूंट ही पानी लेता है ॥२८७॥

तीनि लोक तिहुँ काल जस चातक ही कें माथ ।
तुलसी जासु न दीनता सुनी दूसरे नाथ ॥२८८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि तीनो लोकोमे और तीनों कालोमे कीर्ति तो केवल अनन्य प्रेमी चातकके ही भाग्यमे है, जिसकी दीनता ससारमे किसी भी दूसरे स्वामीने नही सुन पायी ॥ २८८ ॥

प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि ।
जाचक जगत कनाउड़ो कियो कनौड़ा दानि ॥२८९॥

भावार्थ—पपीहा और मेघके प्रेमका परिचय प्रत्यक्ष ही नये ही ढंगका है; याचक (मँगता) तो ससारभरका ऋणी होता है, परंतु इस प्रेमी पपीहेने दानी मेघको अपना ऋणी बना डाला ॥२८९॥

नहिं जाचत नहिं संग्रही सीस नाइ नहिं लेइ ।
ऐसे मानी मागनेहि को बारिद बिन देइ ॥२९०॥

भावार्थ—पपीहा न तो मुँहसे माँगता है, न जलका संग्रह करता है और न सिर झुकाकर लेता ही है (ऊँचा सिर किये ही 'पिउ' 'पिउ' की टेर लगाया करता है) ऐसे मानी माँगनेवाले चातकको मेघके अतिरिक्त और कौन दे सकता है ? ॥ २९० ॥

को को न ज्यायो जगत में जीवन दायक दानि ।
भयो कनौड़ो जाचकहि पयद प्रेम पहिचानि ॥२९१॥

भावार्थ—जगत्मे इस जीवनदाता दानी मेघने किस-किसको नही जिलाया ? परतु अपने प्रेमी याचक चातक के प्रेमको पहचानकर तो यह मेघ उल्टा स्वय उसीका ऋणी हो गया ॥ २९१ ॥

साधन साँसति सब सहत सबहि सुखद फल लाहु ।
तुलसी चातक जलद की रीझि बूझि बुध काहु ॥२९२॥

भावार्थ—साधनमें सभी कष्ट सहते हैं और फलकी प्राप्ति सभीके

लिये सुखदायिनी होती है; परन्तु तुलसीदासजी कहते हैं कि चातक-की-सी रीझ (प्रेम) और मेघकी-सी बुद्धि किसी विरले ही बुद्धिमान्‌की होती है (चातक मेघपर इतना रीझा रहता है कि कष्ट सहनेपर भी उससे प्रेम बढ़ाता ही है और मेघकी ऐसी बुद्धिगुणज्ञता है कि वह दाता होकर भी ऋणी बन जाता है।) ॥ २९२ ॥

चातक जीवन दायकहि जीवन समयँ सुरीति।
तुलसी अलख न लखि परै चातक प्रीति प्रतीति ॥२९३॥

भावार्थ—चातकके जीवनदाता मेघके प्रेमकी सुन्दर रीति तो उसके जीवनकालमें ही देखनेमे आती है; परन्तु [अनन्य प्रेमी] चातकका प्रेम एवं विश्वास तो अलख (अज्ञेय) है, तुलसीदासजी कहते है, वह तो किसीके लखनेमें ही नही आता (अर्थात् उसका प्रेम तो मरते समय भी बना रहता है)—(देखिये दो० ३०२, ३०४, ३०५) ॥ २९३ ॥

जीव चराचर जहँ लगे है सब को हित मेह।
तुलसी चातक मन बस्यो घन सों सहज सनेह ॥२९४॥

भावार्थ—ससारमे जितने चर-अचर जीव हैं, मेघ उन सभीका हितकारी है; परन्तु तुलसीदासजी कहते हैं कि उस मेघके प्रति स्वाभाविक स्नेह तो एक चातकके ही चित्तमे बसा हुआ है ॥२९४॥

डोलत बिपुल बिहंग बन पिअत पोखरिन बारि।
सुजस धवल चातक नवल तुही भुवन दस चारि ॥२९५॥

भावार्थ—वनमे बहुत-से पक्षी डोलते हैं और वे पोखरियोंका जल पिया करते है; परंतु हे नित्य नवीन प्रेमी चातक! चौदहो लोकोंको अपने निर्मल यशसे उज्ज्वल तो एक तू ही करता है ॥२९५॥

मुख मीठे मानस मलिन कोकिल मोर चकोर ।
सुजस धवल चातक नवल रह्यो भुवन भरि तोर ॥२९६॥

भावार्थ—कोयल, मोर और चकोर मुँहके तो मीठे होते हैं; परंतु मनके बड़े मैले होते हैं (बोली तो बड़ी मीठी बोलते हे, पर कीट-सर्पादि जीवोको खा जाते हे) परंतु हे नवल चातक! विश्व-भरमे निर्मल यश तो तेरा ही छाया हुआ है ॥ २९६ ॥

बास बेस बोलनि चलनि मानस मंजु मराल ।
तुलसी चातक प्रेम की कीरति बिसद बिसाल ॥२९७॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हे कि हसका निवासस्थान (मानसरोवर), वेष (रग-रूप), बोली, चाल और [नीर-क्षीरका विवेक, रखनेवाला तथा मोती चुगनेकी टेकवाला] मन सभी सुन्दर हें, परतु प्रेमकी कीर्ति तो सबसे बढ़कर विस्तृत और निर्मल चातक-की ही है ॥ २९७ ॥

प्रेम न परखिअ परुषपन पयद सिखावन एह ।
जग कह चातक पातकी ऊसर बरसै मेह ॥२९८॥

भावार्थ—संसारके लोग (विषयीजन) कहते हे कि चातक पापी है, क्योकि मेघ ऊसरतकमे बरसता है [परंतु चातकके मुँहमे नही बरसता]; पर मेघ इससे यह शिक्षा देता है कि प्रेमकी परीक्षा कठोरतासे नही करनी चाहिये (अर्थात् कठोरतामे प्रेम नही है, ऐसा नही मानना चाहिये; कही-कही कठोरतामे ही प्रेमका प्रकाश होता है। चातक पापी नही है, महान् प्रेमी है; उसके प्रेमका यश मेघकी कठोरतासे बढ़ता है) ॥ २९८ ॥

होइ न चातक पातकी जीवन दानि न मूढ़ ।
तुलसी गति प्रहलाद की समुझि प्रेम पथ गूढ़ ॥२९९॥

भावार्थ—न तो चातक ही पापी है और न जीवनदाता मेघ ही मूर्ख है। तुलसीदासजी कहते है कि प्रह्लादकी दशापर विचार करके समझो कि प्रेमका मार्ग कितना गूढ (सूक्ष्म) है। (प्रह्लादको पद-पद-पर कष्ट मिलता है और भगवान् उसके कष्टको जानते हुए भी बहुत विलम्बसे प्रकट होते हैं। यह उनकी प्रेमलीला ही है।) ॥२९९॥

गरज आपनी सबन को गरज करत उर आनि।
तुलसी चातक चतुर भो जाचक जानि सुदानि ॥३००॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि अपनी-अपनी गरज सभी को होती है और उसी गरजको (कामनाको) हृदयमे रखकर लोग जहाँ-तहाँ गरज करते (सबसे विनती करते) फिरते हैं। परंतु चतुर (अनन्य प्रेमी) चातक तो एक मेघको ही सर्वोत्तम दानी समझकर केवल उसीका याचक बना ॥३००॥

चरग चंगु गत चातकहि नेम प्रेम की पीर।
तुलसी परबस हाड़ पर परिहै पुहुमी नीर ॥३०१॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि बाजके पंजेमे फंसनेपर चातकको अपने प्रेमके नियमकी पीड़ा (चिन्ता) होती है। [उसे यह चिन्ता नही होती कि मैं मर जाऊँगा, पर इस बातकी बड़ी पीडा होती है कि बाजकेद्वारा मारे जानेपर] मेरी हड्डियां और पांख [स्वाती-नक्षत्रमें मेघ-जलमे न पड़कर] पृथ्वीके साधारण जलमें पड़ेगा ॥३०१॥

बध्यो बधिक परयो पुन्य जल उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम पट मरतहुँ लगी न खोंच ॥३०२॥

भावार्थ—किसी बहेलियेने चातकको मार दिया, वह पुण्य-सलिल गङ्गाजीमें गिर पड़ा, परतु गिरते ही उस अनन्य प्रेमी

चातकने चोंचको उलट कर ऊपर उठा लिया। तुलसीदासजी कहते हैं कि चातकके प्रेमरूपी वस्त्रपर मरते दमतक कोई खोंच नही लगी (वह कहीसे फटा नही) ॥३०२॥

अंड फोरि कियो चेटुवा तुष परचो नीर निहारि।
गहि चंगुल चातक चतुर डारचो बाहिर बारि ॥३०३॥

भावार्थ—किसी चातकने अडेको फोडकर उसमेंसे बच्चा निकाला, परंतु अंडेके छिलकेको पानीमें पड़ा हुआ देखकर उस [प्रेमराज्यके] चतुर चातकने तुरंत उसे पजेसे पकड़कर जलसे बाहर फेंक दिया ॥३०३॥

तुलसी चातक देत सिख सुतहि बारहीं बार।
ताल न तर्पन कीजिऐ बिना बारिधर धार ॥३०४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि चातक अपने पुत्रको बारंबार यही सीख देता है कि हे तात! [मेरे मरने पर] प्यारे मेघ की धाराको छोड़कर अन्य किसी जलसे मेरा तर्पण न करना ॥३०४॥

सोरठा

जिअत न नाई नारि चातक घन तजि दूसरहिं।
सुरसरिहू को बारि मरत न माँगेउ अरध जल ॥३०५॥

भावार्थ—जीते-जी तो चातकने [प्यारे] मेघको छोड़कर दूसरेके सामने गर्दन नही झुकायी (याचना नही की) और मरते समय भी गङ्गाजलमे* अर्धजलीतक न माँगी (मुक्तिका भी निरादर कर दिया) ॥३०५॥

*मरते हुए आदमीको आधा गङ्गाजीमे और आधा बाहर रखते हैं, इसको 'अर्धजल' क्रिया कहते हैं। इस अवस्थामे जिसके प्राण छूटते हैं, उसकी सहज मुक्ति हो जाती है—ऐसा शास्त्रोमे वर्णन आता है।

सुनु रे तुलसीदास प्यास पपीहहि प्रेम की ।
परिहरि चारिउ मास जो अँचवै जल स्वाति को ॥३०६॥

भावार्थ—रे तुलसीदास ! सुन, पपीहेको तो केवल प्रेमकी ही प्यास है [जलकी नही]; इसीलिये वह बरसातके चारो महीनोके जलको छोडकर केवल स्वाति-नक्षत्रका ही जल पीता है ॥३०६॥

जाचै बारह मास पिऐ पपीहा स्वाति जल ।
जान्यो तुलसीदास जोगवत नेही नेह मन ॥३०७॥

भावार्थ—चातक बारहो महीने मेघसे [उसे देखते ही 'पिउ-पिउ' की पुकार मचाकर] जल माँगा करता है, परंतु पीता है केवल स्वाति-नक्षत्रका ही जल। तुलसीदासजी कहते हैं कि मैंने इससे यह समझा है कि चातक ऐसा करके अपने स्नेही मेघका मन रखता है (जिससे मेघको यह कहनेका मौका न मिले कि तू तो स्वार्थी है, जब प्यास लगती है, तभी मुझे पुकारता है, फिर सालभर मेरा नाम भी नही लेता) ॥३०७॥

दोहा

तुलसी कें मत चातकहि केवल प्रेम पिआस ।
पिअत स्वाति जल जान जग जाँचत बारह मास ॥३०८॥

भावार्थ—तुलसीदासके मतसे तो चातकको केवल प्रेमकी ही प्यास है [जलकी नही]; क्योकि सारा जगत् इस बातको जानता है कि चातक पीता तो है केवल स्वाति-नक्षत्रका जल, परतु याचक बना रहता है बारहो महीने ॥३०८॥

आलबाल मुकुताहलनि हिय सनेह तरु मूल ।
होइ हेतु चित चातकहि स्वाति सलिल अनुकूल ॥३०९॥

भावार्थ—चातकके हृदयरूपी मोतियोकी (बहुमूल्य) क्यारीमें प्रेमरूपी वृक्षकी जड़ लगी है। ईश्वर करे स्वाति-नक्षत्रका जल

चातकके चित्तमे रहनेवाले प्रेमके लिये अनुकूल हो जाय। (अर्थात् स्वाति-नक्षत्रके जलसे हृदयमे लगी हुई प्रेम वृक्षकी जड़ भलीभाँति सींची जाय, जिससे प्रेम-वृक्ष फूल-फलकर लहलहा उठे) ॥३०९॥

उष्न काल अरु देह खिन मग पंथी तन ऊख।
चातक बतियाँ ना रुचीं अन जल सींचें रूख ॥३१०॥

भावार्थ—गर्मियोके दिन थे, चातक शरीरसे खिन्न था (थका हुआ था), रास्ते चल रहा था, उसका शरीर बहुत गरम हो रहा था [इतनेमे उसे कुछ पेड़ दीख पड़े, मनमे आया कि जरा विश्राम कर लूँ] परंतु अनन्य प्रेमी चातकको मनकी यह बात अच्छी नही लगी; क्योकि वे वृक्ष [स्वाति-नक्षत्रके जलसे सींचे हुए न होकर] दूसरे ही जलसे सींचे हुए थे ॥३१०॥

अन जल सींचे रूख की छाया तें बरु घाम।
तुलसी चातक बहुत हैं यह प्रबीन को काम ॥३११॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि यो चातक (चातक-प्रेमका दम भरनेवाले) बहुत हैं, परतु 'स्वातीके जलके अतिरिक्त अन्य जलसे सींचे हुए वृक्षकी छायासे तो धूप ही अच्छी' ऐसा मानना तो किसी [प्रेम-प्रणको निबाहनेमे] चतुर चातक (सच्चे प्रेमी) का ही काम है ॥३११॥

एक अंग जो सनेहता निसि दिन चातक नेह।
तुलसी जासों हित लगै वहि अहार वहि देह ॥३१२॥

भावार्थ—चातकका जो रात-दिनका (नित्य-चौबीसो घटेका) प्रेम है, वही एकाङ्गी प्रेम है।* तुलसीदासजी कहते हैं, ऐसा एकाङ्गी

*एकाङ्गी प्रेम उसे कहते हैं, जिसमे प्रेमी यह नही देखता कि प्रेमास्पद उसके बदलमे प्रेम करता है या नही।

प्रेम जिसके साथ लग जाता है, वही उसका आहार है, (वह खाना-पीना सब भूलकर उसीकी स्मृतिसे जीता रहता है) और वही उसका शरीर है (वह अपने शरीरकी सुधि भुलाकर उसीके शरीरमे तन्मय हुआ रहता है) ॥ ३१२ ॥

एकांगी अनुरागके अन्य उदाहरण

बिबि रसना तनु स्याम है बंक चलनि बिष खानि ।
तुलसी जस श्रवननि सुन्यो सीस समरप्यो आनि ॥३१३॥

भावार्थ—जिसके दो जीभें है, काला शरीर और टेढी चाल है तथा जो विषकी खान है, ऐसा सर्प भी कानोसे अपनी प्रशसा सुनते ही [प्रेमवश] आकर अपना सिर सौंप देता है* ॥ ३१३ ॥

मृगका उदाहरण

आपु ब्याध को रूप धरि कुहौ कुरंगहि राग ।
तुलसी जो मृग मन मुरै परै प्रेम पट दाग ॥३१४॥

भावार्थ—राग (वीणाका मधुर स्वर) स्वयं बहेलियाका रूप धरकर हरिनको मार डाले [परतु रागके प्रति उसका अनुराग तो वैसा ही रहता है]। तुलसीदासजी कहते है कि यदि रागकी ओरसे हरिनका मन फिर जाय तो प्रेमरूपी (स्वच्छ) वस्त्रमे दाग लग जाय ॥ ३१४ ॥

सर्पका उदाहरण

तुलसी मनि निज दुति फनिहि ब्याधहि देउ दिखाइ ।
बिछुरत होइ न आँधरो ताते प्रेम न जाइ ॥३१५॥

---

*सँपेरा मन्त्र पढकर सांपकी वडी प्रशसा करता है और पूंगी बजाता है । प्रशसा सुनकर सर्प प्रसन्न होकर तुरत दौड़कर उसके पास आ पहुंचता है और सँपेरे के द्वारा पकड़ा जाता है ।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि [मणिके लोभसे सर्पको मारनेके लिये आये हुए] व्याधको मणि अपने प्रकाशसे भले ही सर्प दिखला दे, [और इस प्रकार उसकी मृत्युमे सहायक बनकर शत्रुका काम करे] परतु [इससे क्या मणिके प्रति सर्पका अनुराग कम हो जाता है? क्या मणिके वियोग मे सर्प अन्धा नही हो जाता?* (अर्थात् वह अन्धा हो जाता है) और मणिसे उसका प्रेम नही हटता ॥ ३१५ ॥

कमलका उदाहरण

जरत तुहिन लखि बनज बन रबि दै पीठि पराउ ।
उदय बिकस अथवत सकुच मिटै न सहज सुभाउ ॥३१६॥

भावार्थ—कमलोके वनको पालेसे जलते हुए देखकर भी सूर्य उनकी ओर पीठ देकर (उनकी अवहेलना करके) चाहे भाग जाय, परतु सूर्यके उदय होनेपर खिल जाना और अस्त होनेपर सिकुड जाना—कमलोका यह सहज स्वभाव (स्वाभाविक प्रेम) नही मिट सकता ॥ ३१६ ॥

मछलीका उदाहरण

देउ आपनें हाथ जल मीनहि माहुर घोरि ।
तुलसी जिऐ जो बारि बिनु तौ तु देहि कबि खोरि ॥३१७॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि जल चाहे स्वयं अपने

---

*कहा जाता है कि रातको मणिधर सर्प अपनी मणि निकालकर जमीनपर रख देता है और उसके प्रकाशसे ओस चाटा करता है और आहारकी खोज किया करता है। व्याध आकर उस मणिपर गोबर डाल देता है, जिससे मणिका प्रकाश ढक जाता है और सर्प मणिको न पाकर अधा हो जाता है और सिर पटक-पटककर मर जाता है।

हाथसे विष घोलकर मछलीको दे दे, पर यदि मछली विना जलके (जलसे वाहर निकलनेपर) जीवित रह जाय तो तुम कवियोको दोष दे सकते हो (यह कह सकते हो कि यह सव कवियोकी झूठी कल्पना है)। तात्पर्य यह कि जलके द्वारा चाहे जैसी नीचता होनेपर भी एकाङ्गी प्रेमका पालन करनेवाली मछली जलके वियोगमे नही जी सकती ॥ ३१७॥

मकर उरग दादुर कमठ जल जीवन जल गेह।
तुलसी एकै मीन को है साँचिलो सनेह ॥३१८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि मगर, पानीके सांप, मेढक और कछुए आदि जलचर जीवोका भी जल ही जीवन है और जल ही घर है, परतु जलके साथ सच्चा प्रेम तो एक मछलीका ही है। (और सव जीव जलके विना स्थलपर भी जीवित रह जाते है, परंतु मछली तो जलका वियोग होते ही प्राण त्याग कर देती है) ॥ ३१८ ॥

मयूरशिखा बूटीका उदाहरण

तुलसी मिटै न मरि मिटेहुँ साँचो सहज सनेह।
मोरसिखा बिनु सूरिहूँ पलुहत गरजत मेह ॥३१९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि सच्चा और स्वाभाविक प्रेम मर मिटनेपर भी नही मिटता। वादलोके गरजते ही [मेघके प्रति प्रेम करनेवाली सूखी हुई] मयूरशिखा वूटी विना जड़की होनेपर भी [तुरंत] पनप उठती है॥ ३१९ ॥

सुलभ प्रीति प्रीतम सबै कहत करत सब कोइ।
तुलसी मीन पुनीत ते त्रिभुवन बड़ो न कोइ ॥३२०॥

भावार्थ—सभी यह कहते हैं कि प्रेम और प्रियतम दोनो ही सुलभ (सस्ते) है और सव ऐसा करते भी है (किसीको प्रियतम वनाकर उससे प्रेम करते है), परंतु तुलसीदासजी कहते है कि [सच्चे प्रेमके नाते] मछलीसे वढकर पवित्र तीनो लोकोमें दूसरा कोई नही है (मछली जलसे निष्काम प्रेम करती है और वियोग होते ही प्राण त्याग देती है, दूसरे ऐसा नही करते) ॥३२०॥

अनन्यताकी महिमा

तुलसी जप तप नेम व्रत सब सबहीं तें होइ ।
लहै बड़ाई देवता इष्टदेव जब होइ ॥३२१॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि जप, तप, नेम तथा व्रत आदि सव साधन तो सभीसे वन सकते है, परंतु मनुष्य वड़ाई तब पाता है, जव वह देवता (भगवान) को अपना [एक मात्र] इष्टदेव-प्रेमका देवता वना लेता है ॥३२१॥

गाढ़े दिनका मित्र ही मित्र है

कुदिन हितू सो हित सुदिन हित अनहित किन होइ ।
ससि छबि हर रबि सदन तउ मित्र कहत सब कोइ ॥३२२॥

भावार्थ—सुखके दिनोमे चाहे कोई मित्र या शत्रु कुछ भी क्यो न हो (कोई महत्वकी वात नही है) सच्चा मित्र तो वही है जो बुरे (विपत्तिके) दिनोमे प्रेम करता है। सूर्य अपने घरमे (अमावस्याके* दिन) चन्द्रमाकी शोभाको हरण कर लेता है, फिर भी उसको सब 'मित्र' ही कहते है (क्योकि वह विपत्तिमें चन्द्रमाका हित करता है, अपनी किरणोसे सदा उसे प्रकाश देता रहता है*) ॥३२२॥

---

*अमावस्याके दिन सूर्य और चन्द्र एक साथ रहते हैं। 'मित्र' सूर्यका नाम भी है।

बराबरीका स्नेह दुःखदायक होता है

कैं लघु कैं बड़ मीत भल सम सनेह दुख सोइ।
तुलसी ज्यों घृत मधु सरिस मिलें महाविष होइ ॥३२३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मित्र अपनेसे या तो छोटा हो या वडा हो, तभी कल्याण है; वरावरीका प्रेम तो दु खदायक ही होता है। जैसे घी और मधु वरावर परिमाणमे मिल जानेसे भयकर विष हो जाता है ॥ ३२३ ॥

मित्रतामें छल बाधक है

मान्य मीत सों सुख चहैं सो न छूऐ छल छाहँ।
ससि त्रिसंकु कैकेइ गति लखि तुलसी मन माहँ ॥३२४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो कोई अपने सम्मान्य मित्रसे सुख चाहता हो तो उसे चाहिये कि वह चन्द्रमा[1], त्रिशकु[2] और कैकेयी[3]की गतिको मनमे विचारकर छलकी छायाको भी न छुवै (अर्थात् किसी भी प्रकारसे छल न करे) ॥ ३२४ ॥

कहिअ कठिन कृत कोमलहुँ हित हठि होइ सहाइ।
पलक पानि पर ओड़िअत समुझि कुघाइ सुघाइ ॥३२५॥

भावार्थ—सच्चा हितैषी उसीको कहना चाहिये, जो नरम

---

१. चन्द्रमाने गुरुपत्नी-गमन किया, जिससे वह अवतक वदनाम है। चन्द्रको सभी कलङ्की कहते हैं।

२. त्रिशकुको गुरु वसिष्ठका अपमान करनेके कारण पहले चाण्डाल होना पडा और पश्चात् विश्वामित्रजीके तपोवलसे सदेह स्वर्ग जाते हुए वापस उल्टे मुंह गिरना और अध॰ लटकना पडा।

३. कैकेयीने अपने स्वामी दशरथसे छल करके तुरंत ही वैधव्य और सदाके लिये अपयश अपने सिर ले लिया।

(साधारण) या कठिन—कैसा भी काम पड़नेपर (हल्की या भारी विपत्तिके समय) स्वयं (विना किसी अनुरोधके) हठ करके सहायता करे। जैसे आँखोपर कोमल चोट होते हुए देखकर उसे पलकोपर ओढ लिया (रोक लिया) जाता है और शरीरपर भारी चोट होते हुए देखकर उसे हाथोपर ओढ लिया जाता है (आँखपर जरा-सा भी कोई आघात होनेको होता है तो पलके तुरत स्वाभाविक ही बंद होकर आँखोको ढक लेती है और आघात स्वयं सह लेती है और सिरपर आघात लगनेकी आशंका होते ही हाथ स्वयमेव उसे बचानेके लिये ऊपर उठ जाते है और स्वयं चोट सह लेते हैं) ॥ ३२५ ॥

वैर और प्रेम अंधे होते हैं

तुलसी बैर सनेह दोउ रहित बिलोचन चारि ।
सुरा सेवरा आदरहिं निंदहिं सुरसरि बारि ॥३२६॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि वैर और प्रेम दोनों चारों आँखोसे (अन्तर्दृष्टि एवं वाह्यदृष्टि दोनोसे रहित) अंधे होते है। बैरी अपने द्वेषीके गुणोको नही देखता और प्रेमी अपने प्रेमास्पद दोष नंही देखता), और न इनको उचित-अनुचितका ज्ञान होता है। जैसे सेवड़ा (वाममार्गी साधक) शरावका [अत्यन्त निन्दनीय और त्याज्य होनेपर भी] आदर करते हैं और पवित्र गंगाजलकी निन्दा करते हैं ॥ ३२६ ॥

दानी और याचकका स्वभाव

रुचै मागनेहि मागिबो तुलसी दानिहि दानु ।
आलस अनख न आचरज प्रेम पिहानी जानु ॥३२७॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि भिखमगेको माँगना और देनेवालेको दान देना ही अच्छा लगता है; अपने-अपने काममें

(माँगने और देनेमे) न तो दोनोको आलस्य आता है, न उद्वेग अथवा झुंझलाहट ही होती है और न आश्चर्य ही होता है, क्योकि प्रेमको ही इन सब भावोका ढक्कन समझो (मांगनेवालेको मांगनेसे तथा देनेवालेको दानसे स्वाभाविक प्रेम हो जाता है, जिससे ये सब वातें उनमे नही आ पाती) ॥३२७॥

प्रेम और वैर ही अनुकूलता और प्रतिकूलतामें हेतु हैं

अमिअ गारि गारेउ गरल गारि कीन्ह करतार ।
प्रेम बैर की जननि जुग जानहिं बुध न गवाँर ॥३२८॥

भावार्थ—ब्रह्माजीने अमृत और विषको निचोडकर (उनके साररूपमे) गालीको रचा है। इसीलिये गाली, प्रेम और वैर दोनो-की जननी (पैदा करनेवाली) है। इस वातको वुद्धिमान् पुरुष जानते है, गँवार नही (हँसी-मजाक या विवाहके समय दी जानेवाली गाली प्रेम उत्पन्न करती है और द्वेष, वैमनस्य या क्रोधसे दी हुई वैर पैदा करती है) ॥३२८॥

स्मरण और प्रिय भाषण ही प्रेमको निशानी है

सदा न जे सुमिरत रहहिं मिलि न कहहिं प्रिय बैन ।
ते पै तिन्ह के जाहिं घर जिन्ह के हिएँ न नैन ॥३२९॥

भावार्थ—जो न तो सदा (कभी) याद करते है और न कभी मिलनेपर मीठे वचन ही बोलते है; उनके घर वे ही जाते है जिनके हियेकी आंखे फूटी होती है (अर्थात् जो महान्-मूर्ख होते है)॥३२९॥

स्वार्थ ही अच्छाई-बुराईका मानदण्ड है

हित पुनीत सब स्वारथहिं अरि असुद्ध बिनु चाड़ ।
निज मुख मानिक सम दसन भूमि परे ते हाड़ ॥३३०॥

भावार्थ—जबतक स्वार्थ है, तबतक सभी वस्तुएँ पवित्र और हितकारी जान पड़ती हैं, बिना चाहकी वही चीजें (जो स्वार्थके समय पवित्र और हितकारी जान पड़ती थी) अपवित्र और शत्रुके समान दिखायी देने लगती हैं। जैसे जबतक दाँत अपने मुँहमे रहते हैं, तबतक वे माणिक के समान मूल्यवान् होते हैं; परंतु वही टूटकर जब जमीनपर गिर पड़ते हैं, तब [अस्पृश्य] हाड़ कहलाते है ॥३३०॥

संसारमें प्रेममार्गके अधिकारी बिरले ही हैं

माखी काक उलूक बक दादुर से भए लोग।
भले ते सुक पिक मोरसे कोउ न प्रेम पथ जोग ॥३३१॥

भावार्थ—संसारमें अधिकाश लोग तो मक्खी, कौए, उल्लू, बगुले और मेढकके सदृश (बिना ही कारण हानि करनेवाले, पर-निन्दारूपी मल भक्षण करनेवाले, भगवान्‌की ओरसे आँख मूँदे रखने वाले, ऊपरसे सुन्दर वेश धारणकर अंदरसे छलनेकी इच्छा रखनेवाले और व्यर्थका बकवाद करनेवाले) हो गये हैं और जो कुछ भले लोग हैं, वे भी तोते, कोयल और मोरके सदृश (देखनेमें अच्छे, पर पलमे प्रेम तोड़कर भाग जानेवाले, बोलनेमे मधुर परंतु स्वार्थी, शरीरसे सुन्दर परंतु कठोर हृदय) है, प्रेमपथपर चलने योग्य तो कोई भी नही है ॥३३१॥)

कलियुगमें कपटकी प्रधानता

हृदयँ कपट बर बेष धरि बचन कहहिं गढ़ि छोलि।
अब के लोग मयूर ज्यों क्यों मिलिए मन खोलि ॥३३२॥

भावार्थ—आजकलके लोग तो मोरके समान हैं; वे सुन्दर वेश धारण करते हैं (ऊपरसे बहुत ही अच्छा, शिष्टतापूर्ण व्यवहार

करते हैं) और अच्छी तरह बना-बनाकर बातें करते हैं, परंतु उनके हृदयमें कपट भरा रहता है। ऐसे लोगोंसे दिल खोलकर कैसे मिला जाय। (तात्पर्य यह है कि आजकल लोग ऊपरसे चिकनी-चुपडी बातें बनाना और देखनेमें सभ्यताका व्यवहार करना तो सीख गये हैं, परतु उनके हृदयमे सरल प्रेम नही है; वे उस मयूरके समान हैं, जिसका शरीर बड़ा ही मनोहर और वाणी अत्यन्त मधुर होती है; परतु जो हृदयका इतना कठोर होता है कि बड़े-बडे जहरीले सांपोंको निगल जाता है) ॥३३२॥

कपट अन्ततक नहीं निभता

चरन चोंच लोचन रँगौ चलौ [मराली चाल ।
छीर नीर बिबरन समय बक उघरत तेहि काल ॥३३३॥

भावार्थ—बगुला चाहे अपने चरण, चोच और आंखोको हसकी तरह रँग ले और हसकी-सी चाल भी चलने लगे; परतु जिस समय दूध और जलको अलग-अलग करनेका अवसर आता है, उस समय उसकी पोल खुल जाती है ॥३३३॥

कुटिल मनुष्य अपनी कुटिलताको नहीं छोड़ सकता

मिलै जो सरलहि सरल ह्वै कुटिल न सहज बिहाइ ।
सो सहेतु ज्यों बक्र गति ब्याल न बिलहिं समाइ ॥३३४॥

भावार्थ—कुटिल मनुष्य अपने स्वभावको नही छोड़ सकता। यदि वह किसी सरलहृदय पुरुषसे सरल होकर मिलता भी है, तो समझ लेना चाहिये कि उसके ऐसा करनेमे कोई-न-कोई हेतु अवश्य है। जैसे सांप टेढ़ी चालसे बिलमे नही घुस सकता [इसलिये बिलमे घुसनेके लिये वह उस समय टेढ़ी चाल छोड़कर सीधा हो

जाता है, परतु वास्तवमे उसकी स्वाभाविक टेढी चाल नही मिटती] ॥३३४॥

कृसधन सखहि न देब दुख मुएहुँ न मागव नीच।
तुलसी सज्जन की रहनि पावक पानी बीच ॥३३५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि सज्जनोकी स्थिति ऐसी हो जाती है जैसे आग और पानीके बीचमे रहना। वे थोड़ी पूंजीवाले मित्रसे तो धन माँगकर उसे कष्ट नही देगे (ऐसा करनेमे उन्हें अग्निमे जलनेके समान पीडा होती है) और धनवान् नीच मनुष्यसे वे मरनेपर भी (अत्यन्त विपत्तिमे भी) नही माँगेंगे (क्योकि उससे माँगना उन्हे जलमें डूब जानेके समान प्राणघातक प्रतीत होता है। अत वे अभावका कष्ट ही सहते रहते है) ॥३३५॥

संग सरल कुटिलहि भएँ हरि हर करहिं निबाहु।
ग्रह गनती गनि चतुर बिधि कियो उदर बिनु राहु ॥३३६॥

भावार्थ—सरल (सज्जन) और कुटिल (दुष्ट) का साथ हो जानेपर भगवान् विष्णु और शिव ही निर्वाह (रक्षा) करते हैं। राहुके ग्रहोकी गणनामें गिने जानेपर चतुर ब्रह्माने उसको विना पेटका बना दिया (यदि वह पेटहीन न होता तो उसका तथा अन्य ग्रहका सङ्ग निभता ही नही; क्योकि वह दुष्ट ग्रह होनेके कारण साथी सरल ग्रहोको कभी खा डाले होता) ॥३३६॥

स्वभावकी प्रधानता

नीच निचाई नहिं तजइ सज्जनहू कें संग।
तुलसी चंदन बिटप बसि बिनु बिष भए न भुअंग ॥३३७॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि सज्जनका सङ्ग होनेपर भी

नीच मनुष्य अपनी नीचताको नही छोडता। चन्दनके वृक्षोमे निवास करके भी साँप विषरहित नही हुए ॥३३७॥

भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ मीचु ॥३३८॥

भावार्थ—भला आदमी अपनी भलाईसे और नीच अपनी नीचतासे ही शोभा पाता है। अमृतकी प्रशसा इसलिये की जाती है कि वह अमरत्व प्रदान करता है, और विष वही सराहनीय है जिससे [शीघ्र और सहज ही] मृत्यु हो जाय ॥३३८॥

मिथ्या माहुर सज्जनहि खलहि गरल सम सांच।
तुलसी छुवत पराइ ज्यों पारद पावक आँच ॥३३९॥

भावार्थ—सज्जन पुरुषके लिये असत्य विष है और दुष्टके लिये सत्य विषके समान है। सज्जन असत्यको और दुष्ट सत्यको छूते ही वैसे ही भाग जाते है जैसे अग्निकी आँच लगते ही पारा उड जाता है ॥३३९॥

सत्संग और असत्संगका परिणामगत भेद

संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ ॥३४०॥

भावार्थ—सतोंका सङ्ग मोक्ष (भवबन्धनसे छूटने) का और विषयी पुरुषोका सङ्ग संसारबन्धनमें पडनेका मार्ग है। इस बातको संत कवि ज्ञानी और वेद-पुराणादि सद्ग्रन्थ सभी कहते है ॥३४०॥

सुकृत न सुकृती परिहरइ कपट न कपटी नीच।
मरत सिखावन देइ चले गीधराज मारीच ॥३४१॥

भावार्थ—पुण्यात्मा पुरुष अपने पुण्यको और नीच, कपटी मनुष्य अपने कपटको मरते दमतक नही छोड़ते। जटायु और मारीच मरते-

मरते इसी बातकी सीख दे गये हैं (जटायुने सीताके छुडानेके प्रयत्नमें परोपकारार्थ प्राण छोड़े और मारीचने मरते समय भी रामके-से स्वरमे 'हा लक्ष्मण' कहकर सीताजीको धोखा दिया) ॥३४१॥

सज्जन और दुर्जनका भेद

सुजन सुतरु बन ऊख सम खल टंकिका रुखान।
पर हित अनहित लागि सब साँसति सहत समान॥३४२॥

भावार्थ—सज्जन पुरुष सुन्दर (लाभकारी) कपास और ऊखके पौधेके समान है और दुर्जन टाँकी और रुखानीके* समान। सज्जन और दुर्जन दोनों ही समान रूपसे कष्ट सहते है; परतु सज्जन सहते है पराये हितके लिये और दुष्ट दूसरोके अहितके लिये ॥३४२॥

पिअहिं सुमन रस अलि बिटप काटि कोल फल खात।
तुलसी तरुजीवी जुगल सुमति कुमति की बात॥३४३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि [भ्रमर और भील दोनों ही वक्षोके सहारे जीते है, किंतु] भ्रमर फूलोंका रस ही पीते है (फूलोको भी नही चुनते) और कोल-भील वृक्षको काटकर उसका फल खाते हैं। यह सुबुद्धि और कुबुद्धिकी बात है ॥३४३॥

अवसरकी प्रधानता

अवसर कौड़ी जो चुकै बहुरि दिएँ का लाख।
दुइज न चंदा देखिऐ उदौ कहा भरि पाख॥३४४॥

भावार्थ—आवश्यकताके समय मनुष्य यदि कौड़ी देनेमे भी चूक जाय तो फिर [अनावश्यक बिना मौके] लाख रुपया देनेसे भी क्या होता है? द्वितीयाके चन्द्रमाको न देखा जाय तो फिर पक्षभर चन्द्रमा उदय होता रहे, उससे क्या होगा? ॥३४४॥

---

*बढ़इयोंका लोहेका एक औजार।

भलाई करना बिरले ही जानते हैं

ग्यान अनभले को सबहि भले भलेहू काउ।
सींग सूँड़ रद लूम नख करत जीव जड़ घाउ ॥३४५॥

भावार्थ—बुराई करनेका ज्ञान तो सभीको है, परतु भलाईका ज्ञान तो कभी किसी भलेको ही होता है। मूर्ख जानवर (गेंडा, हाथी, सिंह, चँवरी गाय, बदर आदि) अपने सीग, सूंड, दांत, पूंछ तथा नख इत्यादिसे दूसरोंको चोट ही पहुंचाते है [उनसे भलाई करना नही जानते] ॥ ३४५ ॥

संसारमें हित करने वाले कम हैं

तुलसी जग जीवन अहित कतहुँ कोउ हित जानि।
सोषक भानु कृसानु महि पवन एक घन दानि ॥३४६॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि जगत्‌मे जीवोका अहित करनेवाले बहुत है, हित करनेवाला तो कही कोई एकाध ही जानो। सूर्य, अग्नि, पृथ्वी, पवन सभी जलको सुखानेवाले हैं, देनेवाला तो एक बादल ही है ॥ ३४६ ॥

सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल ॥३४७॥

भावार्थ—अमृत तो केवल सुननेमे ही आता है; परतु विष जहाँ-तहाँ प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। विधाताके सभी कार्य विकराल हैं। कौए, उल्लू और बगुले जहाँ-तहाँ (सर्वत्र) दिखायी देते हैं, परंतु हस तो केवल एक मानसरोवरमे ही मिलते है [दूसरोंकी बुराई करने-वाले नीच सभी जगह मिलते हैं, परतु परहितमें लगे हुए संत तो सत्सङ्गमे ही मिलते हैं] ॥३४७॥

जलचर थलचर गगनचर देव दनुज नर नाग ।
उत्तम मध्यम अधम खल दस गुन बढ़त बिभाग ॥३४८॥

भावार्थ—जलमें रहनेवाले, स्थलपर रहनेवाले और आकाशमें विचरनेवाले जीवों तथा देवता, राक्षस, मनुष्य और नाग—इन सब योनियोमे उत्तमकी अपेक्षा मध्यम, मध्यकी अपेक्षा अधम और अधमकी अपेक्षा नीच—दुष्ट प्राणियोकी सख्या दसगुनी अधिक हो जाती है (उत्तमसे मध्यम दसगुने, मध्यमसे अधम दसगुने और अधमसे नीच दसगुने है, उत्तम वहुत ही थोड़े है) ॥ ३४८ ॥

बलि मिस देखे देवता कर मिस मानव देव ।
मुए मार सुबिचार हत स्वारथ साधन एव ॥३४९॥

भावार्थ—बलिदानके वहाने देवताओंको और राज्य-कर (दण्ड) के वहाने राजाओंको देख लिया । दोनों ही स्वार्थ साधनेवाले विचारशून्य और मरेको ही मारनेवाले है ॥ ३४९ ॥

सुजन कहत भल पोच पथ पापि न परखइ भेद ।
करमनास सुरसरित मिस बिधि निषेध बद बेद ॥३५०॥

भावार्थ—कर्मनाशा और गङ्गाजीके वहाने जैसे वेद विधि और निषेध दोनों तरहके कर्मोंका वर्णन करते है (कर्मनाशामें नहानेका निषेध है और गङ्गास्नानकी विधि है) वैसे ही सत्पुरुष [ग्रहण और त्यागके लिये] भले-बुरे दोनों ही मार्ग वतलाते है, परतु पापी मनुष्य इस भेदको नही समझते ॥ ३५० ॥

वस्तु ही प्रधान है, आधार नहीं

मनि भाजन मधु पारई पूरन अमी निहारि ।
का छाँड़िअ का संग्रहिअ कहहु बिबेक बिचारि ॥३५१॥

भावार्थ—शरावसे भरे हुए मणिमय पात्र और अमृतसे पूर्ण मिट्टी-के वर्तनको देखकर जरा विवेकपूर्वक विचारकर कहो कि इन दोनोंमे किसका त्याग करना चाहिये और किसका ग्रहण ? (तात्पर्य यह कि उत्तम वस्तु सामान्य स्थानमे हो तो भी उसे लेना चाहिये, परतु बुरी वस्तु उत्तम स्थानमे हो तो भी उसका त्याग ही करना चाहिये)॥ ३५१॥

प्रीति और वैर की तीन श्रेणियाँ

उत्तम मध्यम नीच गति पाहन सिकता पानि ।
प्रीति परिच्छा तिहुन की बैर बितिक्रम जानि ॥३५२॥

भावार्थ—प्रीतिकी परीक्षामे उत्तम, मध्यम और नीच—इन तीनोंकी स्थिति क्रमश. पत्थर, बालू और जलके समान है (अर्थात् उत्तम पुरुषकी प्रीति पत्थरकी लीकके समान अमिट है, मध्यम मनुष्य-की प्रीति बालूकी रेखाके समान—दूसरी हवा न लगनेतक ही है और नीचकी प्रीति तो जलकी लकीरके समान है । जैसे अँगुलीसे जलमे लकीर करते जाइये, साथ-ही-साथ वह मिटती चली जायगी, ऐसे ही नीचकी प्रीति तत्काल नष्ट हो जाती है); परतु वैर इसके विपरीत (उत्तम पुरुषका जलकी लकीरके समान तत्काल नष्ट होनेवाला, मध्यमका बालूकी रेखाके समान कुछ समयतक रहनेवाला और नीच-का पत्थरकी लकीरके सदृश चिरस्थायी होता है) ॥ ३५२ ॥

जिसे सज्जन ग्रहण करते है उसे दुर्जन त्याग देते हैं

पुन्य प्रीति पति प्रापतिउ परमारथ पथ पाँच ।
लहहिं सुजन परिहरहिं खल सुनहु सिखावन साँच ॥३५३॥

भावार्थ—पुण्य, प्रेम, प्रतिष्ठा, प्राप्ति (लौकिक लाभ) और परमार्थका पथ—इन पाँचोका सज्जनगण तो ग्रहण करते है और दुष्टलोग त्याग देते है । इस सच्ची सीखको सुनो ॥ ३५३ ॥

प्रकृतिके अनुसार व्यवहारका भेद भी आवश्यक है

नीच निरादरहीं सुखद आदर सुखद बिसाल।
कदरी बदरी बिटप गति पेखहु पनस रसाल ॥३५४॥

भावार्थ—नीच लोग निरादर करनेसे और बड़े लोग आदर करनेसे सुखदायी होते हैं। इस बातको समझनेके लिये केले और बेर तथा कटहल और आमके पेड़ोंकी दशा देखो (केला तथा बेर काटे जानेपर अधिक फल देते हैं, परंतु कटहल और आम सींचने और सेवा करने पर ही फलते हैं) ॥ ३५४ ॥

अपना आचरण सभीको अच्छा लगता है

तुलसी अपनो आचरन भलो न लागत कासु।
तेहि न बसात जो खात नित लहसुनहू को बासु ॥३५५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि अपना आचरण किसको अच्छा नहीं लगता ? जो नित्य लहसुन खाता है, उसको लहसुनकी दुर्गन्ध नहीं मालूम होती ॥ ३५५ ॥

भाग्यवान् कौन है ?

बुध सो बिबेकी बिमलमति जिन्ह कें रोष न राग।
सुहृद सराहत साधु जेहि तुलसी ताको भाग ॥३५६॥

भावार्थ—वे पुरुष निर्मल बुद्धिवाले, ज्ञानवान् और बुद्धिमान् हैं जिनका न किसीमें राग (आसक्ति) है, न किसीके प्रति क्रोध (द्वेष) है; किंतु साधुजन जिन्हें सुहृद् (सबका अकारण हितू) कहकर सराहना करते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं वे बड़े ही भाग्यशाली हैं ॥ ३५६ ॥

साधुजन किसकी सराहना करते हैं

आपु आपु कहँ सब भलो अपने कहँ कोइ कोइ।
तुलसी सब कहँ जो भलो सुजन सराहिअ सोइ ॥३५७॥

भावार्थ—स्वयं अपने लिये सभी भले हैं (सभी अपनी भलाई करना चाहते है), कोई-कोई अपनोकी (मित्र-बान्धवोकी) भी भलाई करनेवाले होते हैं। तुलसीदासजी कहते है कि जो सबकी भलाई करनेवाला (सुहृद्) है, साधुजनोके द्वारा उसीकी सराहना होती है॥ ३५७॥

संगकी महिमा

तुलसी भलो सुसंग तें पोच कुसंगति सोइ।
नाउ किंनरी तीर असि लोह बिलोकहु लोइ ॥३५८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि अच्छी सङ्गतिसे मनुष्य अच्छा और बुरी सङ्गतिसे वही बुरा हो जाता है। हे लोगो! देखो—जो लोहा नावमें लगनेसे सबको पार उतारनेवाला और सितारमे लगनेसे मधुर संगीत सुनाकर सुख देनेवाला बन जाता है वही तलवार और तीरमे लगनेसे जीवोका प्राणघातक हो जाता है॥ ३५८॥

गुरु संगति गुरु होइ सो लघु संगति लघु नाम।
चार पदारथ में गनै नरक द्वारहू काम ॥३५९॥

भावार्थ—बड़ोकी संगतिसे मनुष्य बड़ा (सम्मान्य) हो जाता है और छोटोकी सङ्गतिसे उसीका नाम छोटा हो जाता है। अर्थ, धर्म और मोक्षके साथ रहनेसे नरकके साक्षात् द्वार कामकी भी गिनती चार पदार्थोमे होती है॥ ३५९॥

तुलसी गुरु लघुता लहत लघु संगति परिनाम।
देवी देव पुकारिअत नीच नारि नर नाम ॥३६०॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि नीच मनुष्योंकी सङ्गतिका यह परिणाम होता है कि बडे महत्त्ववाले पुरुष भी लघुताको प्राप्त हो जाते हैं। नीच स्त्री-पुरुषोंके नाम होनेसे देवी-देवता भी लघुतासे ही पुकारे जाते हैं ॥ ३६० ॥

तुलसी किएँ कुसंग थिति होहिं दाहिने बाम।
कहि सुनि सकुचिअ सूम खल गत हरि संकर नाम ॥३६१॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि कुसङ्गतिमे स्थित रहनेसे अच्छे भी बुरे हो जाते हैं। हरि, शकर आदि भगवान्‌के नाम परम कल्याणकारी हैं, परतु वही नाम कजूस और दुष्ट पुरुषोंके रख दिये जाते हैं तो लोग उन नामोंको कहते-सुनते सकुचाते हैं ॥ ३६१ ॥

बसि कुसंग चह सुजनता ताकी आस निरास।
तीरथहू को नाम भो गया मगह के पास ॥३६२॥

भावार्थ—कुसङ्गतिमे निवास करके जो सज्जनताकी आशा करता है, उसकी आशा निराशामात्र है। मगधके पास बसनेसे पवित्र विष्णुपद तीर्थका नाम भी 'गया' (गया-बीता) पड़ गया! ॥ ३६२ ॥

राम कृपाँ तुलसी सुलभ गंग सुसंग समान।
जो जल परै जो जन मिलै कीजै आपु समान ॥३६३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि गङ्गाजी और सत्सङ्गति दोनों समान हैं। गङ्गाजीमे कैसा भी जल पड़े और सत्सङ्गतिमें कैसा भी दुर्जन मनुष्य जाय, उसको ये दोनों अपने ही समान पवित्र बना देती हैं। परंतु इनकी प्राप्ति श्रीरामकृपासे ही सुलभ है ॥३६३॥

ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग ॥३६४॥

भावार्थ—ग्रह, ओषधि, जल, वायु और वस्त्र—ये सभी बुरा या अच्छा सङ्ग पाकर जगत्मे बुरे या अच्छे पदार्थ बन जाते है। इस रहस्यको अच्छे लक्षणवाले बुद्धिमान् लोग ही जान पाते है ॥ ३६४ ॥

जनम जोग में जानिअत जग बिचित्र गति देखि ।
तुलसी आखर अंक रस रंग बिभेद बिसेषि ॥३६५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि जैसे अक्षर (क, ख, ग आदि), अंक (१, २, ३ आदि), रस (मीठा, खट्टा आदि) और रंग (नीला, लाल, पीला आदि) में [इनके परस्पर सयोगके भेदसे] विशेष भेद हो जाता है, ऐसे ही मनुष्यके जन्मकालमे भिन्न-भिन्न ग्रहोका योग होता है; उसीको देखकर जगत्की विचित्र गति जानी जाती है ॥ ३६५ ॥

आखर जोरि बिचारि करु सुमति अंक लिखि लेखु ।
जोग कुजोग सुजोग मय जग गति समुझि बिसेषु ॥३६६॥

भावार्थ—अक्षरोंको जोड़कर विचार करो और हे सुमति ! अङ्कोको लिखकर हिसाब लगाओ तो भलीभाँति समझ जाओगे कि जगत्की गति योगसे कुयोग और सुयोगमयी हो जाती है ('धर्म' के पहले 'अ' अक्षर जोड़ दो, अधर्म हो जायगा और अधर्मके आगे 'हीन' ये दो अक्षर जोड़ दो तो 'अधर्मसे रहित' अर्थ हो जायगा; इसी प्रकार १ अङ्कके आगे ०० दो शून्य लगा दो तो १०० हो जायगा, वही शून्य पहले लगा दोगे तो उस एकको भी कोई नही गिनेगा। इसी तरह कुसङ्गति-सुसङ्गतिसे जगत्मे मनुष्य बुरा-भला हो जाता है) ॥ ३६६ ॥

मार्ग भेदसे फल भेद

करु बिचारि चलु सुपथ भल आदि मध्य परिनाम।
उलटि जपें 'जारा मरा' सूधें 'राजा राम' ॥३६७॥

भावार्थ—विचार करके सुमार्गपर चलो, ऐसा करनेसे आदि, मध्य और परिणाममे भला-ही-भला है। जैसे विना विचारे उलटा जपनेसे जो शब्द 'जारा' और 'मरा' हो जाता है वही विचारपूर्वक सीधा जपनेसे 'राजा राम' हो जाता है (जो कल्याणमय है) ॥३६७॥

भलेके भला ही हो, यह नियम नहीं है

होइ भले कें अनभलो होइ दानि कें सूम।
होइ कपूत सपूत कें ज्यों पावक में धूम ॥३६८॥

भावार्थ—जैसे पवित्र तेजोमय अग्निसे काला धुआँ निकलता है वैसे ही भलेके बुरा, दानीके कंजूस और सुपूतके कुपूत उत्पन्न हो जाता है ॥ ३६८ ॥

विवेककी आवश्यकता

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकारि ॥३६९॥

भावार्थ—विधाताने इस जड-चेतन विश्वको गुण-दोषमय रचा है। परन्तु संतरूपी हंस दोषरूपी जलको त्याग कर गुणरूपी दूधको ग्रहण करते हैं ॥ ३६९ ॥

सोरठा

पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर।
कृमि पालइ सबु कोइ परम अपावन प्रान सम ॥३७०॥

भावार्थ—रेशम कीडेसे होता है, उससे सुन्दर रेशमी वस्त्र वनते हैं। इसीलिये अत्यन्त अपवित्र कीड़ोको भी सब लोग प्राणोके समान पालते है ॥३७०॥

दोहा

जो जो जेहिं जेहिं रस मगन तहँ सो मुदित मन मानि।
रसगुन दोष बिचारिबो रसिक रीति पहिचानि ॥३७१॥

भावार्थ—जो-जो जिस-जिस रसमे मग्न होता है, वह उसीमे सतोष मानकर आनन्दित होता है। परतु रसके गुण-दोषका विचार करना तो रसिकोंकी रीतिकी पहचान है (अर्थात् रसके गुण-दोपका विचार तो रसिकजन ही करते है) ॥३७१॥

सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद विधि कीन्ह।
ससि सोषक पोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह ॥३७२॥

भावार्थ—यद्यपि शुक्ल और कृष्ण दोनो पक्षोमे उजियाला और अँधेरा बराबर रहता है, तो भी विधाताने उनके नाममे भेद कर दिया है। शुक्लपक्षको चन्द्रमाका पोषक (कलाको वढानेवाला) जानकर उसे जगत्में यश दिया अर्थात् यशरूप 'शुक्लपक्ष' नाम रक्खा और कृष्णपक्षको चन्द्रमाका शोषक (कलाओको घटाने वाला) जानकर उसे अयश दिया अर्थात् कलङ्करूप 'कृष्णपक्ष' नाम रक्खा ॥३७२॥

कभी-कभी भलेको बुराई भी मिल जाती है

लोक बेदहू लौं दगो नाम भले को पोच।
धर्मराज जम गाज पबि कहत सकोच न सोच ॥३७३॥

भावार्थ—लोक और वेदतकमे भी भलेका बुरा नाम प्रसिद्ध है। धर्मराजको यम और विजलीको वज्र कहनेमे किसीको सोच अथवा संकोच नही होता ॥३७३॥

सज्जन और दुर्जनकी परीक्षाके भिन्न-भिन्न प्रकार

बिरुचि परखिऐ सुजन जन राखि परखिऐ मंद ।
बड़वानल सोषत उदधि हरष बढ़ावत चंद ॥३७४॥

भावार्थ—सतोंकी परख तो हमारी रुचिके विना ही हो जाती है (उनके सरल पवित्र स्वभावसे और उनकी कृपासे हमारे बिना ही प्रयत्न उनका परिचय मिल जाता है), परंतु दुष्ट मनुष्यकी परीक्षा कुछ दिन पास रखकर करनी पड़ती है (सहज ही उसके कपटको पहचानना कठिन होता है)। वड़वानल समुद्रमे वहुत दिन रहनेके बाद समुद्रके जलको सोखता है, परतु चन्द्रमा दर्शन देते ही समुद्रके हर्षको बढाता है ॥३७४॥

नीच पुरुषकी नीचता

प्रभु सनमुख भएँ नीच नर होत निपट बिकराल ।
रबिरुख लखि दर न फटिक उगिलत ज्वालाजाल ॥३७५॥

भावार्थ—मालिकके अनुकूल होनेपर नीच मनुष्य [अभिमानके मारे] एकदम भयंकर बन जाते हैं। जैसे दर्पण और स्फटिक सूर्यकी रुख अपनी तरफ देखकर आगकी लपटें उगलने लगते हैं ॥३७५॥

सज्जनकी सज्जनता

प्रभु समीप गत सुजन जन होत सुखद सुबिचार ।
लवन जलधि जीवन जलद बरषत सुधा सुबारि ॥३७६॥

भावार्थ—मालिकके पास रहनेसे सज्जन पुरुष सबको सुख देने-वाले हो जाते है, इस वातको अच्छी तरह विचार लो। वादलका जीवन खारे समुद्रका जल है; परंतु वह दूसरोके लिये [खारा जल न देकर] सुन्दर अमृतके समान जल वरसाता है ॥३७६॥

नीच निरावहिं निरस तरु तुलसी सींचहिं ऊख ।
पोषत पयद समान सब बिष पियूष के रूख ॥३७७॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि नीच मनुष्य रसहीन (सूखे) वृक्षोको तो खेतसे उखाड फेंकते और रसवाले ऊखको सीचते है; परतु बादल (जल बरसाकर) विष और अमृत दोनो प्रकारके वृक्षोका समानरूपसे पोषण करता है ॥३७७॥

बरषि बिस्व हरषित करत हरत ताप अघ प्यास ।
तुलसी दोष न जलद को जो जल जरै जवास ॥३७८॥

भावार्थ—बादल तो बरसकर समस्त विश्वको प्रसन्न करता है और सबके ताप (गर्मी), दु:ख और प्यासको हरण करता है। तुलसीदासजी कहते है कि यदि उसके जलसे जवासा जल जाय तो इसमे बादलका कोई दोष नही है ॥३७८॥

अमर दानि जाचक मरहिं मरि मरि फिरि फिरि लेहिं ।
तुलसी जाचक पातकी दातहि दूषन देहिं ॥३७९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि दाता अमर रहते हैं (उनकी कीर्ति ससारमे बनी रहती है) और याचक मरते है (मांगना मरनेके तुल्य ही है), बार-बार मरते है और बार-बार दान लेते है। फिर भी वे पापी याचक दाताको सदा दोष ही देते रहते है ॥३७९॥

नीचनिन्दा

लखि गयंद लै चलत भजि स्वान सुखानो हाड़ ।
गज गुन मोल अहार बल महिमा जान कि राड़ ॥३८०॥

भावार्थ—हाथीको देखकर कुत्ता सूखे हाडको लेकर दौड जाता है (समझता है, कही हाथी इस हाडको छीन न ले)। वह मूर्ख हाथीके गुण, मूल्य, आहार और बलकी महिमाको क्या जाने ? ३८०॥

सज्जनमहिमा

कै निदरहुँ कै आदरहुँ सिंघहि स्वान सिआर।
हरष विषाद न केसरिहि कुंजर गंजनिहार ॥३८१॥

भावार्थ—कुत्ते और सियार सिंहका निरादर करें, चाहे आदर करें, हाथीको पछाड़नेवाले सिंहको इससे कोई हर्ष या शोक नही होता (वह कुत्ते-सियारोंकी ओर ताकता ही नही) ॥३८१॥

दुर्जनोंका स्वभाव

ठाढ़ो द्वार न दै सकै तुलसी जे नर नीच।
निदहिं बलि हरिचंद को का कियो करन दधीच ॥३८२॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो मनुष्य नीच प्रकृतिके हैं, वे स्वयं तो द्वारपर खड़े हुए भिक्षुकको कुछ भी नही दे सकते, परंतु वलि और हरिश्चन्द्रकी निन्दा करते है और कहते है कि कर्ण और दधीचिने कौन वड़ा काम किया था ? ॥३८२॥

नीचकी निन्दासे उत्तम पुरुषोंका कुछ नहीं घटता

ईस सीस बिलसत बिमल तुलसी तरल तरंग।
स्वान सरावन के कहें लघुता लहै न गंग ॥३८३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि जिन श्रीगङ्गाजीकी निर्मल और तरल तरङ्गें भगवान् श्रीशंकरके मस्तकपर शोभा पाती है, उन श्रीगङ्गाजीकी महिमामे कुत्ते और सरावगियोंके कहनेसे कुछ कमी नही हो जाती ॥३८३॥

तुलसी देवल देवको लागे लाखि करोरि।
काक अभागें हगि भरयो महिमा भई कि थोरि ॥३८४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं—जिस देवमन्दिरके वनवानेमें

लाखों-करोड़ों रुपये लगे हों, उसमे यदि अभागे कौएने बीट कर दी तो इससे उस मन्दिरकी महिमा थोड़े ही घट गयी (वह तो ज्यों-की-त्यों बनी रहती है) ॥ ३८४ ॥

गुणोंका ही मूल्य है, दूसरोंके आदर-अनादरका नहीं

निज गुन घटत न नाग नग परखि परिहरत कोल ।
तुलसी प्रभु भूषन किए गुंजा बढ़े न मोल ॥३८५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जगली कोललोग गजमुक्ता-को परखकर फेंक देते हैं, इससे उसका गुण घट नही जाता। इसके विपरीत भगवान् श्रीकृष्णने गुंजा (घुंघची) के गहने बनाकर पहने, परंतु इससे उनकी कीमत बढ़ नही गयी ॥ ३८५ ॥

श्रेष्ठ पुरुषोंकी महिमाको कोई नहीं पा सकता

राकापति षोड़स उअहिं तारा गन समुदाइ ।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रबि राति न जाइ ॥३८६॥

भावार्थ—चाहे चन्द्रमा समस्त तारागणको साथ लेकर और सोलह कलाओसे पूर्ण होकर उदय हो जाय और साथ ही सभी पहाड़ोमें आग भी लगा दी जाय, तो भी सूर्यके उदय हुए विना रात्रि नही जा सकती ॥ ३८६ ॥

दुष्ट पुरुषोंद्वारा की हुई निन्दा-स्तुतिका कोई मूल्य नहीं है

भलो कहहिं बिनु जानेहूँ बिनु जानें अपबाद ।
ते नर गादुर जानि जियँ करिय न हरष बिषाद ॥३८७॥

भावार्थ—जो लोग विना ही जाने-सुने किसीको भला बताने लगते हैं और विना ही जाने किसीकी निन्दा करने लगते है, उन

मनुष्योको [उसी मुखसे खाने और उसीसे मलत्याग करनेवाले] चमगादड़ समझकर उनके कहनेसे अपने मनमें हर्ष-विषाद नही करना चाहिये ॥ ३८७ ॥

डाह करनेवालोंका कभी कल्याण नहीं होता

पर सुख संपति देखि सुनि जरहिं जे जड़ बिनु आगि।
तुलसी तिन के भागते चलै भलाई भागि ॥३८८॥

भावार्थ—दूसरेकी सुख-सम्पत्तिको देख-सुनकर जो मूर्ख मनुष्य बिना ही आगके जलने लगते है, तुलसीदासजी कहते है कि उनके भाग्यसे भलाई भागकर चली जाती है (उनका कभी भला नही होता) ॥ ३८८ ॥

दूसरोंकी निन्दा करनेवालोंका मुँह काला होता है

तुलसी जे कीरति चहहिं पर की कीरति खोइ।
तिनके मुँह मसि लागिहैं मिटिहि न मरिहै धोइ ॥३८९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि जो दूसरेकी कीर्तिको मिटाकर अपनी कीर्ति चाहते है, उनके मुखपर ऐसी कालिख लगेगी, जो चाहे वे उसे धो-धोकर मर जायँ, कभी नही छूटेगी ॥ ३८९ ॥

मिथ्या अभिमानका दुष्परिणाम

तनु गुन धन महिमा धरम तेहि बिनु जेहि अभिमान।
तुलसी जिअत बिडंबना परिनामहु गत जान ॥३९०॥

भावार्थ—सुन्दर शरीर, सद्‌गुण, पर्याप्त धन, बड़ाई और धर्ममें निष्ठा—इनके न होनेपर भी जिसको मिथ्या अभिमान है—तुलसीदासजी कहते है—उसका जीवन विडम्बनामात्र है (जीवनकालमें उसकी बदनामी ही होती है) और उसका परिणाम भी गया-बीता

(बुरा) ही समझना चाहिये (मरनेपर भी उसे सद्गति नहीं मिलती) ॥ ३९० ॥

नीचा बनकर रहना ही श्रेष्ठ है

सासु ससुर गुरु मातु पितु प्रभु भयो चहै सब कोइ।
होनी दूजी ओर को सुजन सराहिअ सोइ ॥३९१॥

भावार्थ—सास, ससुर, गुरु, माता, पिता और मालिक इत्यादि होना (बड़े बनकर हुक्म चलाना और सेवा कराना) तो सभी चाहते हैं; परतु जो लोग इनके दूसरी तरफके अर्थात् बहू, दामाद, शिष्य, कन्या, पुत्र और सेवक बनना (नीचे पदमे रहकर आज्ञा मानना और सेवा करना) चाहते है, वही सज्जन सराहने योग्य है॥३९१॥

सज्जन स्वाभाविक ही पूजनीय होते हैं

सठ सहि साँसति पति लहत सुजन कलेस न कायँ।
गढ़ि गुढ़ि पाहन पूजिऐ गंडकि सिला सुभायँ ॥३९२॥

भावार्थ—दुष्टलोग बडे-बड़े कष्ट सहकर तब कही प्रतिष्ठा प्राप्त करते है; परंतु सज्जनोको (प्रतिष्ठाप्राप्तिमे) कुछ भी शारीरिक क्लेश नही होता। जैसे साधारण पत्थर जब गढ-छुलकर मूर्तिके रूपमे आते है तब पूजे जाते है; परंतु गण्डकी नदीके पत्थर (शालग्राम-शिला) स्वाभाविक ही पूजनीय होते है ॥ ३९२ ॥

भूप-दरबारकी निन्दा

बड़े बिबुध दरबार तें भूमि भूप दरबार।
जापक पूजक पेखिअत सहत निरादर भार ॥३९३॥

भावार्थ—देवताओके दरबारसे भी पृथ्वीके राजाओके दरबार बड़े हैं; क्योकि इनमे (राजाओके दरबारमे) भगवान्‌के नामका जप

करनेवाले और भगवान्‌की पूजा करनेवाले भी वड़ा भारी अपमान सहते देखे जाते है (जो देवताओके दरवारमे असम्भव है) ॥३९३॥

छल-कपट सर्वत्र वर्जित है

बिनु प्रपंच छल भीख भलि लहिअ न दिएँ कलेस।
बावन बलि सों छल कियो दियो उचित उपदेश ॥३९४॥

भावार्थ—विना छल-कपटके मिलनेवाली भीख ही उत्तम है, किसीको क्लेश पहुँचाकर भीख नही लेनी चाहिये। भगवान्‌ने वामन-रूप धरकर वलिसे छल किया और इसी वहाने सवको उपदेश दिया (कि छल करना वहुत बुरा है, छल करनेके कारण ही मुझे पातालमे वलिका द्वारपाल बनना पड़ा है) ॥ ३९४ ॥

भलो भले सों छल किएँ जनम कनौड़ो होइ।
श्रीपति सिर तुलसी लसति बलि बावन गति सोइ॥३९५॥

भावार्थ—भला आदमी यदि किसी भले आदमीसे छल कर बैठता है तो उसे फिर जन्मभर उससे दवकर रहना पडता है। भगवान् लक्ष्मीपतिने वृन्दासे छल किया था, इससे वह तुलसीके रूपमें भगवान्‌के सिरपर विराजमान रहती है; और भगवान् वामनजीने राजा वलिसे छल किया, तो उनकी भी वही गति हुई (उन्हें उसका द्वारपाल बनकर रहना पड़ा) ॥ ३९५ ॥

बिबुध काज बावन बलिहि छलो भलो जिय जानि।
प्रभुता तजि सब भे तदपि मन की गइ न गलानि ॥३९६॥

भावार्थ—भगवान् वामनजीने अपने मनमे अच्छा समझकर ही देवताओके कार्यके लिए वलिको छला, फिर अपना स्वामित्व छोड़कर

जगत्में सब सीधोंको तंग करते हैं

सरल बक्र गति पंच ग्रह चपरि न चितवत काहु ।
तुलसी सूधे सूर ससि समय विडंवित राहु ॥३९७॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि सीधी-टेढी (दोनों प्रकार-की) चाल चलनेवाले (मगल, वुध, गुरु, शुक्र और शनि—इन) पांच ग्रहोमेसे तो किसीको राहु जल्दी आंख उठाकर देखता भी नही। परतु सीधी चालवाले सूर्य और चन्द्रमाको समयपर वही राहु त्रास देता है (भाव यह कि टेढोसे सभी डरते हैं और सीधोंको सभी खानेको तैयार रहते हैं) ॥३९७॥

दुष्टनिन्दा

खल उपकार विकार फल तुलसी जान जहान ।
मेढुक मर्कट वनिक वक कथा सत्य उपखान ॥३९८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि इस वातको तमाम दुनिया जानती है कि दुष्टोंके साथ उपकार करनेका फल वुरा होता है। सत्योपाख्यान नामक ग्रन्थमे लिखी हुई मेढक, वंदर, वणिक् और वगुलेकी कथाएं इसके उदाहरण हैं ॥३९८॥

१—एक मेढकने अपने विरोधी कुटुम्वियोका नाश करानेके लिये एक सांपको वुलाया। उसने सोचा कि सांपको पेटभर भोजन मिलेगा तो वह मेरा उपकार मानेगा और विरोधियोका नाश हो जायगा। सांपने आकर उसके सव कुटुम्वियोको खा डाला और फिर उस मेढकको भी खानेके लिये तैयार हो गया। उसने किसी तरह अपनी जान वचायी।

२—एक वंदरकी किसी मगरसे दोस्ती थी। वदर अपने दोस्त

दिन मगर अपनी स्त्रीके कहनेसे बंदरको पीठपर चढ़ाकर छलसे पानीमें ले आया और उसका कलेजा निकालना चाहा। बुद्धिमान् बंदरने उसके कपटको जानकर मगरसे कहा कि भाई ! मैं तो कलेजा घर छोड़ आया। मूर्ख मगरने उससे कहा—'अच्छा जाओ, उसे ले आओ। मगर उसे पीठपर चढ़ाकर किनारे ले गया। बंदरने पानीसे बाहर कूदकर अपनी जान बचायी।

३—एक वणिक्‌की राजासे मित्रता थी, राजाको किसी मन्त्र-सिद्धिके लिये एक स्त्रीकी पूजा करनी थी। राजाने इसके लिये वणिक्‌से उसकी स्त्रीको माँगा। वणिक्‌ने विश्वास करके स्त्रीको राजाके महलमें भेज दिया। राजाके मनमें पाप आ गया और उसने स्त्रीपर बलात्कार किया। वणिक्‌को इससे बड़ा ही दुःख पहुँचा।

४—एक बगुलेने किसी आदमीको धनका खजाना बतलाया। परंतु उसने उपकार न मानकर उलटे उसीको मार डाला।

तुलसी खल बानी मधुर सुनि समुझिअ हियँ हेरि।
राम राज बाधक भई मूढ़ मंथरा चेरि ॥३९९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि दुष्टकी (कपटभरी) मीठी वाणी सुनकर अपने हृदयमें अच्छी तरह विचारकर उसका मतलब समझना चाहिये (सहसा उसपर विश्वास नहीं कर लेना चाहिये)। मूढ़ दासी मंथरा छलभरी मीठी वाणीसे ही [कैकेयीको निमित्त बनाकर] रामजीके राज्याभिषेकमें बाधक हुई थी ॥३९९॥

जोंक सूधि मन कुटिल गति खल बिपरीत बिचारु।
अनहित सोनित सोष सो सो हित सोषनहारु ॥४००॥

भावार्थ—जोंककी चाल टेढ़ी होती है, परंतु वह मनसे सीधी होती है; क्योंकि वह हानिकारक रक्तको ही चूसती है। परंतु

दुष्टोको इससे विपरीत समझना चाहिये (वे बाहरी चाल-ढालसे तो बड़े ही सीधे दीखते हैं, परंतु मनके अत्यन्त कपटी होते हैं)। क्योंकि वे तो दूसरोके हितका ही शोषण (नाश) करनेवाले होते हैं ॥४००॥

नीच गुड़ी ज्यों जानिबो सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि दिएँ गिरि परत महि खैंचत चढ़त अकास ॥४०१॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि नीच आदमियोको अच्छी तरह जान-सुनकर गुड्डीके समान समझना चाहिये। जैसे गुड्डी ढील देनेसे पृथ्वीपर गिर पड़ती है और खींचनेसे आकाशमे चढ जाती है [इसी प्रकार दुरदुरा देनेसे नीच आदमी सीधे हो जाते हैं; पर अपनानेसे उलटे सिर चढ़ते हैं] ॥४०१॥

भरदर बरसत कोस सत बचैं जे बूँद बराइ।
तुलसी तेउ खल बचन सर हए गए न पराइ ॥४०२॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो सौ कोसतक बरसती हुई घनी वर्षामे भी जलकी बूंदोसे विना भीगे बच निकलते हैं, वे भी दुष्टोके वचन-बाणोसे मारे जाते हैं, भाग नही सकते। (घनी वर्षामे विना भीगे निकला जा सकता है, परतु दुष्टोकी निन्दासे कोई नही बच सकता) ॥४०२॥

पेरत कोल्हू मेलि तिल तिली सनेही जानि।
देखि प्रीति की रीति यह अब देखिबी रिसानि ॥४०३॥

भावार्थ—तेली तिलोको स्नेही (इनमे तेल है यह) जानकर भी उन्हे कोल्हूमे डालकर पेरता है। यह तो प्रेम (स्नेह) की रीति देखी, अब क्रोधकी रीति देखनी है (अर्थात् जब प्रेमसे भी कोल्हूमे पेरता है तब क्रोधमे तो जाने क्या करेगा) ॥४०३॥

सहबासी काचो गिलहिं पुरजन पाक प्रबीन।
कालछेप केहि मिलि करहिं तुलसी खग मृग मीन ॥४०४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि बेचारे पक्षी, हिरन और मछली किसके साथ मिल-जुलकर अपना जीवन बितावे? एक स्थानमें रहनेवाले-एक ही आकाशमें उड़नेवाले वाज, एक ही वनमें रहनेवाले सिंह और एक ही जलमें रहनेवाली बड़ी मछलियाँ या ग्राह आदि तो इन्हें कच्चे ही निगल जाते हैं और पुरजन (गाँवो तथा नगरोके निवासी) पाकविद्यामें निपुण होनेके कारण इन्हें पकाकर खा जाते है (तात्पर्य यह कि दुर्वलोके लिये कही ठौर नही है) ॥४०४॥

जासु भरोसें सोइऐ राखि गोद में सीस।
तुलसी तासु कुचाल तें रखवारो जगदीस ॥४०५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि विश्वास करके जिसकी गोदमें सिर रखकर सोया जाय वही [विश्वासघात करके] कुचाल करे तो फिर उस कुचालसे भगवान् ही रक्षा कर सकते हैं ॥४०५॥

मार खोज लै सौंह करि करि मत लाज न त्रास।
मुए नीच ते मीच बिनु जे इन कें बिस्वास ॥४०६॥

भावार्थ—जो शपथें खा-खाकर मित्र वन जाते हैं और फिर घरका भेद जानकर एकमत करके (आपसमें साजिस करके) मित्रको मार डालते है, जिन्हें अपने ऐसे कुकर्मोसे न तो लज्जा आती है और न जिन्हे ईश्वर या धर्मका डर ही लगता है—ऐसे नीचोंका जो विश्वास करते है, वे नीच (मन्दबुद्धि) विना मौत मारे जाते हैं ॥४०६॥

परद्रोही परदार रत परधन पर अपवाद।
ते नर पावँर पापमय देह धरें मनुजाद ॥४०७॥

भावार्थ—जो मनुष्य दूसरोसे वैर रखते है तथा जिनकी परायी स्त्रीमे, पराये धनमे और परनिन्दामे आसक्ति है, वे पामर पापमय मनुष्य नर-देह धारण किये हुए राक्षस ही हैं ॥४०७॥

कपटीको पहिचानना बड़ा कठिन है

बचन बेष क्यों जानिऐ मनमलीन नर नारि।
सूपनखा मृग पूतना दसमुख प्रमुख बिचारि ॥४०८॥

भावार्थ—किसी भी पुरुष या स्त्रीके बाहरी वेष और वचनसे कैसे पता लग सकता है कि इसका मन मलिन है? शूर्पणखा, मारीच, पूतना और रावण आदिके उदाहरणोपर विचार करो (इनके हृदयमे कपट भरा था; परतु ऊपरसे बडे ही सुन्दर वेषधारी और मीठी वाणी बोलनेवाले थे, इसलिये ये पहचाने नही जा सके। इस प्रकार ससारमे दम्भी लोगोको उनके वेश-भूषा और बातचीतसे पहचानना कठिन है) ॥४०८॥

कपटीसे सदा डरना चाहिये

हँसनि मिलनि बोलनि मधुर कटु करतब मन माँह।
छुवत जो सकुचइ सुमति सो तुलसी तिन्ह की छाँह ॥४०९॥

भावार्थ—जिनका हँसना, मिलना और बोलना बडा ही मधुर है, परतु जिनके मनमे कड़ुए कारनामे (कपटभरे कर्म) भरे हुए हैं—तुलसीदासजी कहते है—उन नीचोकी छायाको छूनेमे भी जो सकुचाता है वही बुद्धिमान् है (अर्थात् मनके कपटी और ऊपरसे सज्जन बने हुए लोगोसे सर्वथा अलग रहनेमे ही बुद्धिमानी है)॥४०९॥

कपट ही दुष्टताका स्वरूप है

कपट सार सूची सहस बाँधि बचन परबास ।
कियो दुराउ चहै चातुरीं सो सठ तुलसीदास ॥४१०॥

भावार्थ—जो कपटरूपी लोहेकी हजारो सूइयोंको वचनरूपी ऊपरके कपड़े (वेठन) में चतुराईसे बाँधकर छिपाना चाहता है तुलसीदासजी कहते हैं कि वह दुष्ट है ॥४१०॥

कपटी कभी सुख नहीं पाता

बचन बिचार अचार तन मन करतब छल छूति ।
तुलसी क्यों सुख पाइऐ अंतरजामिहि धूति ॥४११॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि जिसके वचनोमे, विचारमे आचरणमे, शरीरमें, मनमे और कर्मोंमें छलकी छूत लगी हुई (अर्थात् जो सव प्रकारसे कपटी है) वह इस प्रकार अन्तर्यामी परमात्माको ठगकर कैसे सुख पा सकता है? ॥४११॥

सारदूल को स्वाँग करि कूकर की करतूति ।
तुलसी ता पर चाहिऐ कीरति बिजय बिभूति ॥४१२

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि लोग सिंहका-सा स्व रचकर कुत्तोंके-से काम करते है तथा इसपर भी कीर्ति, विजय अं ऐश्वर्य चाहते है ! ॥४१२॥

पाप ही दुःखका मूल है

बड़े पाप बाढ़े किए छोटे किए लजात ।
तुलसी ता पर सुख चहत बिधि सों बहुत रिसात ॥४१

भावार्थ—बड़े-बडे पाप तो बढ़-बढ़कर किये और छोटे करनेमें लजाता है (सूईकी चोरीको पाप समझकर नहीं क

परंतु दूसरेका धन व्यापारके नामपर हरनेमें जिसे आपत्ति नही है; अथवा जो नहाये विना खानेमे तो पाप मानता है, परंतु दिन-रात कपट-छल, चोरी-हिसा, वेश्यागमन आदिमे रचा-पचा रहता है)—तुलसीदासजी कहते हैं कि इसपर भी मनुष्य [अपनेको धर्मात्मा मानकर] सुख चाहता है और [न मिलनेपर] विधातापर क्रोध करता है ॥४१३॥

अविवेक ही दुःखका मूल है

देस काल करता करम बचन बिचार बिहीन।
ते सुरतरु तर दारिदी सुरसरि तीर मलीन ॥४१४॥

भावार्थ—जिनको देश, काल, कर्ता, कर्म और वचनका विचार नही है, वे कल्पवृक्षके नीचे रहनेपर भी दरिद्री और देवनदी श्रीगङ्गाजीके तीर पर वस कर भी पापी बने रहते हैं (अर्थात जो) इस बातका विचार नही करते कि किस स्थानमे किस समय किसको कैसा कर्म करना चाहिये और कैसे वचन बोलने चाहिये, वे सदा दरिद्री और पापी ही बने रहते हैं)॥४१४॥

साहसहीं कै कोप बस किएँ कठिन परिपाक।
सठ संकट भाजन भए हठि कुजाति कपि काक ॥४१५॥

भावार्थ—दुःसाहस या क्रोधके वश होकर कर्म करनेसे उसका फल बहुत ही कठोर होता है। नीच और दुष्ट वालि और जयन्त इसी प्रकार हठपूर्वक कर्म करके संकटके पात्र हुए ॥४१५॥

राज करत बिनु काजहीं करहिं कुचालि कुसाजि।
तुलसी ते दसकंध ज्यों जइहैं सहित समाज ॥४१६॥

भावार्थ—जो राजा राज्य करते हुए विना ही कारण बुरी चाल

चलते हैं तथा बुरे काम करने लगते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं कि वे रावणकी तरह अपने समाजसहित नष्ट हो जायँगे ॥४१६॥

राज करत बिनु काजहीं ठटहिं जे कूर कुठाट ।
तुलसी ते कुरुराज ज्यों जइहैं बारह बाट* ॥४१७॥

भावार्थ—जो क्रूर राजा राज्य करते हुए विना ही कारण बुरे काम करने लगते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं कि वे दुर्योधनकी तरह बारह बाट (सब प्रकारसे नष्ट) हो जायँगे ॥४१७॥

विपरीत बुद्धि विनाशका लक्षण है

सभाँ सुजोधन की सकुनि सुमति सराहन जोग ।
द्रोन बिदुर भीषम हरिहि कहहिं प्रपंची लोग ॥४१८॥

भावार्थ—दुर्योधनकी सभामे [अत्यन्त नीच स्वभाववाला] शकुनि ही श्रेष्ठ, बुद्धिमान् और सराहनीय माना जाता था। गुरु द्रोणाचार्य, महात्मा विदुर, पितामह भीष्म और भगवान् श्रीकृष्णको तो (उस सभाके) लोग प्रपची कहते थे ॥४१८॥

पांडु सुवन की सदसि ते नीको रिपु हित जानि ।
हरि हर सम सब मानिअत मोह ग्यान की बानि ॥४१९॥

भावार्थ—और पाण्डवोकी सभामें सब लोग उन्ही द्रोण और भीष्मको, यह भलीभाँति जानते हुए भी कि ये हमारे शत्रु कौरवोंके मित्र हैं, भगवान् विष्णु और शिवके समान मानते थे। अज्ञान और ज्ञानकी बानिका यही भेद है। (भगवान् श्रीकृष्ण प्रत्यक्ष ही पाण्डवोके सहायक और पूज्य थे, महात्मा विदुरजी युद्धसे अलग थे ही। द्रोण और

---

*मोह, दीनता, भय, ह्रास, हानि, ग्लानि, क्षुधा, तृषा, क्षोभ, व्यथा, मृत्यु और अपकीर्ति—ये बारह बाट हैं।

भीष्म कौरवोकी ओरसे सेनानायक थे, तथापि यथार्थ ज्ञानके अभ्यासी पाण्डवोकी सभामे सब लोग उन्हें यथार्थमे ही पूज्य समझते थे) ॥४१९॥

हित पर बढ़इ बिरोध जब अनहित पर अनुराग ।
राम बिमुख बिधि बाम गति सगुन अघाइ अभाग ॥४२०॥

भावार्थ—जब अपने हित करनेवालेके प्रति शत्रुता और हितका नाश करनेवालेपर प्रेम बढ जाता है, तब समझना चाहिये कि भगवान् श्रीरामजी उसके विमुख हैं, विधाताकी गति उसके प्रतिकूल है और यह उसके पूर्णरूपसे अभागी होनेका शकुन (चिह्न) है ॥४२०॥

सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि ।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि ॥४२१॥

भावार्थ—स्वभावसे ही हित करनेवाले मित्र, गुरु और स्वामीकी सीखको जो सिर चढाकर उसके अनुसार कार्य नही करता, वह हृदयमे भरपेट पछताता है और उसके हितकी अवश्य ही हानि होती है ॥ ४२१ ॥

जोशमें आकर अनधिकार कार्य करनेवाला पछताता है

भरुहाए नट भाँट के चपरि चढ़े संग्राम ।
कै वै भाजे आइहैं कै बाँधे परिनाम ॥४२२॥

भावार्थ—भाटोके भडकानेसे जोशमे आकर यदि नट (नाचनेवाले) लोग सहसा लडाईमे चले जायँ तो उसका यही परिणाम होगा कि या तो वे रणसे भाग आवेंगे या कैद कर लिये जायँगे ॥४२२॥

समयपर कष्ट सह लेना हितकर होता है

लोक रीति फूटी सहहिं आँजी सहइ न कोइ ।
तुलसी जो आँजी सहइ सो आँधरो न होइ ॥४२३॥

भावार्थ—लोगोकी यह रीति है कि वे आँखोके फूटनेका कष्ट तो सह लेते हैं; परंतु अंजन (सुरमा) लगानेका कष्ट नही सहते। तुलसीदासजी कहते हैं—जो अजन लगानेका कष्ट सह लेता है, वह अंधा नही होता ॥ ४२३ ॥

भगवान् सबके रक्षक हैं

भागें भल ओड़ेहुँ भलो भलो न घालें घाउ ।
तुलसी सब के सीस पर रखवारो रघुराउ ॥४२४॥

भावार्थ—यदि कोई तुमपर वार करे तो भाग जानेमे ही तुम्हारी भलाई है अथवा आत्मरक्षाके लिये डटकर उस वारको रोकना भी अच्छा है; परंतु बदलेमे उसपर चोट करना अच्छा नही है; क्योकि रक्षा करनेवाले श्रीरघुनाथजी तो सबके सिरपर मौजूद ही हैं ॥४२४॥

लड़ना सर्वथा त्याज्य है

सुमति बिचारहिं परिहरहिं दल सुमनहुँ संग्राम ।
सकुल गए तनु बिनु भए साखी जादौ काम ॥४२५॥

भावार्थ—पत्तो और फूलोके द्वारा भी लड़ाई करना बुरा है, यह विचारकर बुद्धिमान् लोग उसे बिल्कुल त्याग देते है। इस बातके साक्षी यादव और कामदेव हैं। पत्तों (तिनकों) के द्वारा परस्पर लड़कर यादवो का सारा कुल नाश हो गया और पुष्प-बाणोसे शिवजीपर प्रहार करनेवाला कामदेव शरीरहीन (अनङ्ग) हो गया ॥ ४२५ ॥

कलह न जानब छोट करि कलह कठिन परिनाम ।
लगति अगिनि लघु नीच गृह जरत धनिक धन धाम ॥४२६॥

भावार्थ—कलहको छोटी बात नही जानना चाहिये; कलहका

परिणाम बहुत भयकर होता है। गरीवकी छोटी-सी झोपड़ीमे आग लगती है, परतु परिणाममे उससे बडे-बड़े धनियोके धन-धाम जल जाते है ॥ ४२६ ॥

क्षमाका महत्त्व

क्षमा रोष के दोष गुन सुनि मनु मानहि सीख ।
अबिचल श्रीपति हरि भए भूसुर लहै न भीख ॥४२७॥

भावार्थ—हे मन ! क्षमा और क्रोधके गुण-दोषोको सुनकर उनसे शिक्षा ग्रहण करो। [भृगुमुनि (ब्राह्मण) की क्रोधसे मारी हुई लातको छातीपर सहकर भगवान् विष्णुने उन्हे क्षमा कर दिया था। क्षमाके कारण] श्रीहरि तो अविचल लक्ष्मीजीके स्वामी हुए, परंतु [एक ब्राह्मणके क्रोधके परिणामस्वरूप] ब्राह्मणोंको भीख भी माँगे नही मिलती ॥ ४२७ ॥

कौरव पांडव जानिऐ क्रोध क्षमा के सीम ।
पाँचहि मारि न सौ सके सयौ सँघारे भीम ॥४२८॥

भावार्थ—कौरवोको क्रोधकी और पाण्डवोको क्षमाकी सीमा समझना चाहिये; परतु कोधके कारण सौ कौरव पाँच पाण्डवोको नही मार सके। इधर अकेले भीमने सौ-के-सौ कौरवोका सहार कर दिया ॥ ४२८ ॥

क्रोधकी अपेक्षा प्रेमके द्वारा वशमें करना ही जीत है

बोल न मोटे मारिऐ मोटी रोटी मारु ।
जीति सहस सम हारिबो जीतें हारि निहारु ॥४२९॥

भावार्थ—किसीको मोटे बोल न मारो (हृदयको छेद डालने-वाले तीखे वचन न कहो), परंतु रोटीकी मोटी मार मारो (उसका

खूब पेट भरकर, सेवा और सहायता करके उसे वशमे करो)। इस तरहकी अपनी हारको हजारो जीतके समान समझो और उस तरहके वाक्य-वाणोके प्रहारसे—गाली-गलौजसे जीत जानेपर भी हार ही समझो ॥ ४२९ ॥

जो परि पायँ मनाइए तासों रूठि बिचारि।
तुलसी तहाँ न जीतिऐ जहँ जीतेहूँ हारि ॥४३०॥

भावार्थ—जिन (माता-पिता, आचार्य आदि गुरुजनों) को उनके पैरोपर पड़कर मनाना कर्तव्य है, उनसे वहुत ही सोच-विचारकर रूठना चाहिये। तुलसीदासजी कहते हैं कि जहाँ जीतनेमे भी हार ही होती है, वहाँ जीतना नही चाहिये ॥ ४३० ॥

जूझे ते भल बूझिबो भली जीति तें हार।
डहके तें डहकाइबो भलो जो करिअ बिचारि ॥४३१॥

भावार्थ—यदि विचार किया जाय तो यही प्रतीत होता है कि लड़नेकी अपेक्षा आपसमें समझौता कर लेना अच्छा है, जीतसे हार अच्छी है और किसीको ठगनेकी अपेक्षा ठगाना अच्छा है ॥ ४३१ ॥

जा रिपु सों हारेहुँ हँसी जितें पाप परितापु।
तासों रारि निवारिऐ समयँ सँभारिअ आपु ॥४३२॥

भावार्थ—जिस शत्रुसे हारनेमे हँसी हो तथा जीतनेमे पाप और दु ख हो, उससे मौका पड़नेपर स्वय ही सँभलकर झगड़ा मिटा लेना चाहिये ॥ ४३२ ॥

जो मधु मरै न मारिऐ माहुर देइ सो काउ।
जग जिति हारे परसुधर हारि जिते रघुराउ ॥४३३॥

भावार्थ—जो शहदसे ही मर जाय उसे जहर देकर कभी नहीं

ारना चाहिये। परशुरामजी सारे जगत्को जीतकर भी श्रीराम-
न्द्रजीकी मधुमयी वाणीसे हार गये और श्रीरघुनाथजी परशुरामजी-
ं सामने अपनी हार मानकर भी जीत गये ॥ ४३३ ॥

बैर मूल हर हित वचन प्रेम मूल उपकार ।
दो हा सुभ संदोह सो तुलसीं किएँ विचार ॥४३४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि हितके वचन वैरकी जडको
ाटनेवाले है और हित करना तो प्रेमकी जड ही है । एव विचार
रनेपर जान पड़ता है कि हाहा खाना। (विनती करना) यह तो
ुभका समूह ही है ॥ ४३४ ॥

रोष न रसना खोलिऐ बरु खोलिअ तरवारि ।
सुनत मधुर परिनाम हित बोलिअ वचन विचारि ॥४३५॥

भावार्थ—क्रोधमे आकर जवान नही खोलनी चाहिये, इससे
ो तलवार खीचना वल्कि अच्छा है। [कहावत है, 'तलवारका
ाव मिट जाता है, पर जवानका कभी नही मिटता ।'] विचार-
िचारकर ऐसे वचन बोलने चाहिये, जो सुननेमें मीठे हो और
रिणाममे हितकारी हो ॥ ४३५ ॥

मधुर बचन कटु बोलिबो बिनु श्रम भाग अभाग ।
कुहू कुहू कलकंठ रव का का कररत काग ॥४३६॥

भावार्थ—मधुर बोलना और कडवा बोलना विना ही श्रमके
ाग्य और अभाग्यको बुलाना (निमन्त्रण देना) है। कोयल 'कुहू'
कुहू'की ध्वनि करती है। [तो सब उसका आदर करते है] और
ौवा 'कॉव' 'कॉव' करांता है [तो लोग उसे पत्थर मारकर उड़ा
ते है] ॥ ४३६ ॥

पेट न फूलत बिनु कहें कहत न लागइ ढेर।
सुमति बिचारें बोलिऐ समुझि कुफेर सुफेर ॥४३७॥

भावार्थ—किसी वातके न कहनेसे तो पेट नही फूल जाता और कहनेसे सामने वातोंका ढेर नही लग जाता। अतएव समय-असमयको समझकर और पवित्र बुद्धिके द्वारा विचार करके ही यथायोग्य वचन वोलने चाहिये ॥ ४३७ ॥

वीतराग पुरुषोंकी शरण ही जगत्के जंजालसे बचनेका उपाय है

छिद्यो न तरुनि कटाच्छ सर करेउ न कठिन सनेहु।
तुलसी तिन को देह को जगत कवच करि लेहु ॥४३८॥

भावार्थ—जिनका हृदय न तो युवतियोके कटाक्ष-वाणोसे घायल हुआ और न जिन्होने विषयोमे कठिन आसक्ति ही की—तुलसीदासजी कहते है—उनके शरीरको जगत्मे अपनी रक्षाके लिये कवच वना लेना चाहिये (अर्थात् ऐसे महापुरुषोके चरणोमे रहनेवाले मनुष्य भी विषयोपर विजय प्राप्त कर लेते हैं) ॥ ४३८ ॥

शूरवीर करनी करते हैं, कहते नहीं

सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।
बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु ॥४३९॥

भावार्थ—शूरवीर तो युद्धमे करनी (शूरवीरताका कार्य) करते हैं, कहकर अपनेको नही जनाते। शत्रुको युद्धमे उपस्थित पाकर कायर लोग ही अपने प्रतापकी डीग मारा करते हैं ॥ ४३९ ॥

अभिमानके वचन कहना अच्छा नहीं

वचन कहे अभिमान के पारथ पेखत सेतु ।
प्रभु तिय लूटत नीच भर जय न मीचु तेहिं हेतु ॥४४०॥

भावार्थ—एक समय [श्रीरामचन्द्रजीकृत रामेश्वरके पत्थरके] तुवन्धको देखकर अर्जुनने अभिमानके वचन कहे [कि श्रीरामजीने तना प्रयास क्यो किया ? मैं उस समय होता तो सारा पुल वाणोसे ो बाँध देता । इस अभिमान का फल यह हुआ कि] भगवान् ीकृष्णके परिवारकी स्त्रियोको [हस्तिनापुर ले जाते समय] नीच ारोने [उनको] लूट लिया, अर्जुन उनको जीत नही सके और इस ापमानसे उनका मरण हो गया [अतएव अभिमानके वचन किसीसे ही कहने चाहिये]॥ ४४० ॥

दीनोंकी रक्षा करनेवाला सदा विजयी होता है

राम लखन बिजई भए बनहुँ गरीब निवाज ।
मुखर बालि रावन गए घरहीं सहित समाज ॥४४१॥

भावार्थ—गरीबोपर कृपा करनेवाले श्रीराम-लक्ष्मण वनमें रहते ए भी विजयी हुए, परंतु बकवादी वालि और रावण अपने घरमे ो सारे समाजसहित नष्ट हो गये ॥ ४४१ ॥

ीतिका पालन करनेवालेके सभी सहायक बन जाते हैं

खग मृग मीत पुनीत किय बनहुँ राम नयपाल ।
कुमति बालि दसकंठ घर सुहृद बंधु कियो काल ॥४४२॥

भावार्थ—नीतिके पालनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने वनमें भी पक्षियो जटायु आदि) और पशुओ (वानर-भालुओ) को अपना पवित्र सच्चा) मित्र बना लिया; परंतु वालि और रावणने घरमे ही

अपने हितैषी भाइयोको (सुग्रीव और विभीषणको) अपना काल वना लिया ॥ ४४२ ॥

सराहनेयोग्य कौन है ?

लखइ अघानो भूख ज्यों लखइ जीतिमें हारि।
तुलसी सुमति सराहिऐ मग पग धरइ बिचारि ॥४४३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि जो भूखमें (अभावमे) भी अपनेको तृप्तके समान समझता है और जीतमें भी अपनी हार मानता है—इस प्रकार जो खूव विचार-विचारकर मार्गपर पैर रखता है, वह बुद्धिमान् ही सराहनेयोग्य है। अभावका अनुभव करनेसे ही कामना होती है और कामना ही पापकी जड़ है; अतएव जो सदा अपनेको तृप्त, पूर्णकाम मानता है, उसके द्वारा पाप नही होते। इसी प्रकार अपनी विजय माननेसे अभिमान बढ़ता है, जो पतनका हेतु होता है। अतएव जो पुरुष प्रत्येक क्रियामे और फलमें अभिमानका त्याग कर विचारपूर्वक दोषोसे वचता रहता है, वही बुद्धिमान् है और वही प्रशसनीय है) ॥ ४४३ ॥

अवसरपर चूक जानेसे बड़ी हानि होती है

लाभ समयको पालिबो हानि समय की चूक।
सदा बिचारहिं चारुमति सुदिन कुदिन दिन दूक ॥४४४॥

भावार्थ—अनुकूल समय आनेपर काम वना लेना ही लाभ है और समयपर चूक जाना ही हानि है। इसीलिये सुन्दर बुद्धिवाले लोग इस बातका सदा विचार किया करते है, क्योकि अच्छा और वुरा समय दो ही दिनका होता है। [अतएव समयपर चूक जाना बुद्धिमानी नही है।] (तात्पर्य यह है कि मनुष्य-जीवनका यह अवसर भगवद्भजनके लिये ही मिला है। इस समय जो चूक

जायगा—भगवान्‌को नही भजेगा, उसे मनुष्य-जीवनके परम लाभसे वञ्चित होकर वड़ी हानि सहनी पड़ेगी) ॥४४४॥

समयका महत्त्व

सिंधु तरन कपि गिरि हरन काज साइँ हित दोउ ।
तुलसी समयहिं सव वड़ो वूझत कहुँ कोउ कोउ ॥४४५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं—समयपर काम करनेसे ही सव वड़े होते है, इस रहस्यको कही कोई-कोई ही जानते है। श्रीहनुमान्‌जीने [सीताका सदेश लानेके लिये] समुद्रको लांघना और [श्रीलक्ष्मणजीकी मूर्च्छा दूर करनेके लिये] द्रोण-पर्वतको लाना—ये दोनो काम अपने स्वामीके हितके लिये ठीक समयपर ही किये थे। (समुद्र लाँघना और पहाड़ उठाना हनूमान्‌जीके लिये साधारण वात थी, परंतु ठीक समयपर होनेसे ही इनकी इतनी महिमा हुई।) ॥ ४४५ ॥

तुलसी मीठी अमी तें मागी मिलै जो मीच ।
सुधा सुधाकर समय विनु कालकूट तें नीच ॥४४६॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि यदि समयपर (जिस समय मनुष्य दु खसे सन्तप्त होकर घवडा उठता है) माँगनेसे मौत भी मिल जाय तो वह अमृतसे अधिक मीठी मालूम होती है। परतु विना अवसरके अमृत या चन्द्रमा भी मिलें तो वे कालकूट जहरसे भी अधिक वुरे लगते है ॥४४६॥

विपत्तिकालके मित्र कौन हैं?

तुलसी असमय के सखा धीरज धरम विवेक ।
साहित साहस सत्यब्रत राम भरोसो एक ॥४४७॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि धीरज, धर्म, विवेक, सत्-साहित्य, साहस और सत्यका व्रत अथवा एकमात्र श्रीरामका भरोसा—बुरे समयके (विपत्तिकालके) यही मित्र हैं ॥४४७॥

समरथ कोउ न राम सो तीय हरन अपराधु ।
समयहिं साधे काज सब समय सराहहिं साधु ॥४४८॥

भावार्थ—भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके समान तो कोई सामर्थ्यवान् नही (जो होनी-अनहोनी सब कुछ कर सकते हैं) और सीताहरणके समान भयकर अपराध कोई क्या करेगा। इसपर भी श्रीरामजीने उस समय रावणको न मारकर उचित समयपर ही सब काम किये। इसीलिये साधुलोग समयकी सराहना करते हैं ॥४४८॥

तुलसी तीरहु के चलें समय पाइबी थाह ।
धाइ न जाइ थहाइबी सर सरिता अवगाह ॥४४९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि नदी या सरोवरके किनारे-किनारे चलनेसे ही समयपर उनकी थाह मिल जायगी; अगाध तालाव या नदियोकी थाह लेनेके लिये दौड़कर उनके अदर घुस नही जाना चाहिये (समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिये) ॥४४९॥

होनहारकी प्रबलता

तुलसी जसि भवतब्यता तैसी मिलइ सहाइ ।
आपुनु आवइ ताहि पैं ताहि तहाँ लै जाइ ॥४५०॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जैसी होनहार होती है, वैसी ही सहायता मिल जाती है। या तो वह स्वयं उसके पास आती है या उसे वहाँ ले जाती है ॥४५०॥

परमार्थप्राप्तिके चार उपाय

कै जूझिबो कै बूझिबो दान कि काय कलेस ।
चारि चारु परलोक पथ जथा जोग उपदेस ॥४५१॥

भावार्थ—परलोकके लिये सुन्दर चार मार्ग हैं और [अधिकार-भेदसे] इनका यथायोग्य उपदेश किया गया है—[वेदाध्ययनादिके द्वारा] ज्ञान अर्जन करना (ब्राह्मणके लिये), [सम्मुख समर-मे] युद्ध करना (क्षत्रियके लिये), [व्यापारमे धन कमाकर] दान देना (वैश्यके लिये) और शरीरसे कष्ट सहकर सेवा करना (शूद्रके लिये) ॥४५१॥

विवेककी आवश्यकता

पात पात को सींचिबो न करु सरग तरु हेत ।
कुटिल कटुक फर फरैगो तुलसी करत अचेत ॥४५२॥

भावार्थ—कल्पवृक्ष [से फल] पानेके लिये पत्ते-पत्तेको (हर किसी पेड़को) मत सीचा करो, ऐसा करोगे तो ऐसा टेढा और कड़ुआ फल फलेगा जो तुमको अचेत कर देगा (अर्थात् परम सुखरूप मनोरथकी पूर्तिके लिये विना समझे-सोचे जैसे-तैसे कर्म मत किया करो, ऐसा करनेसे सुख तो मिलेगा ही नहीं, उल्टे बुरे कर्मोंके फलस्वरूप महान् दु.खोकी प्राप्ति होगी, जिससे रहा-सहा विवेक भी नष्ट हो जायगा) ॥४५२॥

विश्वासकी महिमा

गठिबँध ते परतीति बड़ि जेहिं सबको सब काज ।
कहब थोर समुझब बहुत गाड़े बढ़त अनाज ॥४५३॥

भावार्थ—गठबन्धनसे भी विश्वास बडा है, जिससे सब लोगो-के सब काम होते हैं। कहनेमे सब बात छोटी-सी है, परन्तु

समझनेसे वहुत बड़ी है। जिस प्रकार अनाजके थोड़े-से दाने मिट्टीमें गाड़ दिये जाते हैं, परतु वही अनाज पैदा होनेपर वहुत वढ जाता है ॥४५३॥

अपनो ऐपन निज हथा तिय पूजहिं निज भीति।
फरइ सकल मन कामना तुलसी प्रीति प्रतीति ॥४५४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि स्त्रियाँ अपने घरकी दीवारपर अपने ऐपनके (चावल और हल्दीको एक साथ पीसकर बनाये हुए रगके) अपने ही हाथे छापकर उनको पूजती हैं और उसीसे उनकी सारी मनः कामनाएँ पूरी हो जाती हैं। यह प्रेम और विश्वासका ही फल है ॥४५४॥

बरषत करषत आपु जल हरषत अरघनि भानु।
तुलसी चाहत साधु सुर सब सनेह सनमानु ॥४५५॥

भावार्थ—सूर्य स्वयं [पृथ्वीपर अपार] जल वरसाता है और सोखता है, परतु लोगोके दिये हुए अर्घ्य (थोडे-से जल) से वड़ा प्रसन्न होता है। तुलसीदासजी कहते है कि साधु और देवता सव स्नेह और सम्मान ही चाहते हैं ॥४५५॥

बारह नक्षत्र व्यापारके लिये अच्छे हैं

श्रुति गुन कर गुन पु जुग मृग हय रेवती सखाउ।
देहि लेहि धन धरनि धरु गएहुँ न जाइहि काउ ॥४५६॥

भावार्थ—श्रवणनक्षत्रसे तीन नक्षत्र (श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष), हस्त नक्षत्रसे तीन नक्षत्र (हस्त, चित्रा, स्वाती), 'पु' से आरम्भ होनेवाले दो नक्षत्र (पुष्य, पुनर्वसु) और मृगशिरा, अश्विनी, रेवती तथा अनुराधा—इन बारह नक्षत्रोमे धन, जमीन और धरोहरका

लेन-देन करो; ऐसा करनेसे धन जाता हुआ प्रतीत होनेपर भी नही जायगा ॥ ४५६ ॥

चौदह नक्षत्रोंमें हाथसे गया हुआ धन वापस नहीं मिलता

ऊगुन पूगुन वि अज कृ म आ भ अ मू गुनु साथ।
हरो धरो गाड़ो दियो धन फिरि चढ़इ न हाथ ॥४५७॥

भावार्थ—'उ'से आरम्भ होनेवाले तीन नक्षत्र (उत्तरा-फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद), 'पू'से आरम्भ होनेवाले तीन नक्षत्र (पूर्वफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद), वि (विशाखा), अज (रोहिणी), कृ (कृत्तिका), म (मघा), आ (आर्द्रा)' भ (भरणी), अ (अश्लेषा) और मू (मूल) को भी इन्हीके साथ समझ लो—इन चौदह नक्षत्रोमे हरा हुआ (चोरी गया हुआ), धरोहर रक्खा हुआ, गाड़ा हुआ तथा उधार दिया हुआ धन फिर लौटकर हाथ नही आता ॥ ४५७ ॥

कौन-सी तिथियाँ कब हानिकारक होती हैं

रवि हर दिसि गुन रस नयन मुनि*प्रथमादिक बार।
तिथि सब काज नसावनी होइ कुजोग विचार ॥४५८॥

भावार्थ—द्वादशी, एकादशी, दशमी, तृतीया, षष्ठी, द्वितीया, सप्तमी—ये सातों तिथियाँ यदि क्रमसे रवि, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनिवारको पड़ें तो ये सब कामोको बिगाड़नेवाली होती है और यह कुयोग समझा जाता है ॥ ४५८ ॥

---

*रवि बारह, हर (रुद्र) ग्यारह, दिशाएँ दस, गुण तीन, रस छ, नेत्र दो और ऋषि-मुनि सात है। इन्हीसे तिथियोका वर्णन है।

कौन-सा चन्द्रमा घातक समझना चाहिये ?

ससि सर नव दुइ छ दस गुन मुनि फल बसु हर भानु ।*
मेषादिक क्रम तें गनहि घात चंद्र जियँ जानु ॥४५९॥

भावार्थ—मेषके प्रथम, वृषके पाँचवें, मिथुनके नवें, कर्कके दूसरे, सिंहके छठे, कन्याके दसवे, तुलाके तीसरे, वृश्चिकके सातवें, धनके चौथे, मकरके आठवे, कुम्भके ग्यारहवे और मीन राशिके बारहवे चन्द्रमा पड़ जायँ तो उसे घातक समझो ॥ ४५९ ॥

किन-किन वस्तुओंका दर्शन शुभ है ?

नकुल सुदरसन दरसनी छेमकरी चक चाष ।
दस दिसि देखत सगुन सुभ पूजहि मन अभिलाष ॥४६०॥

भावार्थ—नेवला, मछली, दर्पण, क्षेमकरी चिड़िया (सफेद मुँहवाली चील्ह), चकवा तथा नीलकंठ—इन्हें दसों दिशाओमेंसे किसी ओर भी देखना शुभ शकुन है और इससे मनकी अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं ॥ ४६० ॥

सात वस्तुएँ सदा मंगलकारी हैं ?

सुधा साधु सुरतरु सुमन सुफल सुहावनि बात ।
तुलसी सीतापति भगति सगुन सुमंगल सात ॥४६१॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि अमृत, साधु, कल्पवृक्ष, पुष्प, सुन्दर फल, सुहावनी बात और श्रीजानकीनाथजीकी भक्ति—ये सात सुन्दर मङ्गलकारी शकुन है ॥ ४६१ ॥

श्रीरघुनाथजीका स्मरण सारे मंगलोंकी जड़ है

भरत सत्रुसूदन लखन सहित सुमिरि रघुनाथ ।
करहु कांज सुभ साज सब मिलिहि सुमंगल साथ ॥४६२॥

*शशि—चन्द्रमा एक, सर—बाण पांच, फल चार, वसु आठ होते हैं ।

भावार्थ—भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मणसहित श्रीरघुनाथजीका स्मरण करके सब शुभ साधनोंके द्वारा कार्य करो तो साथ-ही-साथ सुन्दर मङ्गल भी मिलता जायगा (अर्थात् मनोरथ सफल होते जायँगे) ॥ ४६२ ॥

यात्राके समयका शुभ स्मरण

राम लखन कौसिक सहित सुमिरहु करहु पयान ।
लच्छि लाभ लै जगत जसु मंगल सगुन प्रमान ॥४६३॥

भावार्थ—श्रीविश्वामित्रजीसहित श्रीरामलक्ष्मणका स्मरण करके यात्रा करो और लक्ष्मीका लाभ लेकर जगत्मे यश लो । यह शकुन सच्चा मङ्गलमय है ॥ ४६३ ॥

वेदकी अपार महिमा

अतुलित महिमा वेद की तुलसी किएँ बिचार ।
जो निंदत निंदित भयो बिदित बुद्ध अवतार ॥४६४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि विचार करनेपर यही सिद्ध होता है कि वेदकी महिमा अतुलनीय है, जिसकी निन्दा करनेसे स्वय भगवान्का बुद्धावतार भी निन्दित हो गया, यह सबको विदित है ॥ ४६४ ॥

बुध किसान सर वेद निज मतें खेत सब सींच ।
तुलसी कृषि लखि जानिबो उत्तम मध्यम नीच ॥४६५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि पण्डितगण किसान हैं और वेद सरोवर है, इसीसे जल ले-लेकर सब अपने-अपने मतरूपी खेतको सीचते हैं, इनमे कौन-सा खेत [मत] उत्तम है और कौन-सा मध्यम या नीच है, इसका पता खेती [उत्तम, मध्यम और नीच फल और विस्तार] देखकर लगाना चाहिए ॥ ४६५ ॥

धर्मका परित्याग किसी भी हालतमें नहीं करना चाहिये

सहि कुबोल साँसति सकल अँगइ अनट अपमान ।
तुलसी धरम न परिहरिअ कहि करि गए सुजान ॥४६६॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि बुरे वचनोको और सब प्रकारके कष्टोको सह लो तथा मिथ्या अपमानको भी अङ्गीकार कर लो, परतु धर्मको मत छोड़ो। श्रेष्ठ बुद्धिमान् पुरुष ऐसा ही उपदेश और आचरण कर गये हैं॥ ४६६ ॥

दूसरेका हित ही करना चाहिए, अहित नहीं

अनहित भय परहित किएँ पर अनहित हित हानि ।
तुलसी चारु विचारु भल करिअ काज सुनि जानि ॥४६७॥

भावार्थ—दूसरेका हित करनेमे तो अपने अहितका केवल भय ही रहता है; परतु दूसरेका अहित करनेमे अपने हितका नाश होता ही है। इसलिये तुलसीदासजी कहते है कि यहाँ यही विचार सुन्दर और मङ्गलकारक है कि जान-सुनकर (सोच-समझकर) काम करना चाहिये (पराये हितका ही काम करना चाहिये, अहितका नही) ॥ ४६७ ॥

प्रत्येक कार्यकी सिद्धिमें तीन सहायक होते हैं

पुरुषारथ पूरब करम परमेस्वर परधान ।
तुलसी पैरत सरित ज्यों सबहिं काज अनुमान ॥४६८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि पुरुषार्थ, पूर्वकर्म (प्रारब्ध) और प्रधानतया परमात्माकी कृपा—इन्हीं तीनोके अवलम्बनसे जैसे नदीको तैरकर पार किया जाता है, वैसे ही सभी कामोंमें अनुमान कर लेना चाहिये ॥ ४६८ ॥

नीतिका अवलम्बन और श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम ही श्रेष्ठ है

चलब नीति मग राम पग नेह निवाहब नीक ।
तुलसी पहिरिअ सो बसन जो न पखारें फीक ।।४६९।।

भावार्थ—नीतिपथपर चलना और श्रीरामजीके चरणोंमे प्रेमका निवाहना (अटूट प्रेम करना) ही उत्तम है। तुलसीदासजी कहते है कि वस्त्र वही पहनना चाहिये, जिसका रग धोनेपर भी फीका न पड़े ।।४६९।।

दोहा चारु बिचारु चलु परिहरि बाद विबाद ।
सुकृत सीवँ स्वारथ अवधि परमारथ मरजाद ।।४७०।।

भावार्थ—उपर्युक्त दोहेको अच्छी तरह विचार लो (अर्थात् नीतिका अवलम्बन और श्रीरामजीके चरणोका प्रेम कभी न छोडो) [अथवा वाद-विवाद छोडकर दो 'हा' अर्थात् हाहा खाना—सबसे विनीत रहना ही सुन्दर विचार है] और वाद-विवाद छोडकर चलो, [चाहे कोई कुछ भी कहे]। बस, यही पुण्यकी सीमा है, यही स्वार्थकी अवधि है और यही परमार्थकी—भगवत्प्राप्तिकी मर्यादा है ।।४७०।।

विवेकपूर्वक व्यवहार ही उत्तम है

तुलसी सो समरथ सुमति सुकृती साधु सयान ।
जो बिचारि ब्यवहरइ जग खरच लाभ अनुमान ।।४७१।।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि वही पुरुष सामर्थ्यवान् बुद्धिमान्, पुण्यात्मा, साधु और चतुर है जो आयके अनुमानसे ही व्यय करता है और जगत्मे विचारपूर्वक व्यवहार करता है ।।४७१।।

जाय जोग जग छेम बिनु तुलसी के हित राखि।
बिनुऽपराध भृगुपति नहुष बेनु बृकासुर साखि ॥४७२॥

भावार्थ—जगत्‌में योगकी (अर्थात् प्राप्त हुए धन, ऐश्वर्य, शक्ति या अधिकारकी) रक्षा किये विना अर्थात् उसका सदुपयोग न करके दुरुपयोग करनेसे वह नष्ट हो जाता है। [जिनके प्रति दुरुपयोग होता है उनका तो कुछ नही विगड़ता, क्योंकि] तुलसी दासके हितैषी श्रीरामजी निरपराधोंकी रक्षा करते ही है। इसमे परशुराम, नहुष, वेन और वृकासुर (भस्मासुर) साक्षी है। (परशु-रामजीने अपने वलका क्षत्रियोके नाशमें दुरुपयोग किया; परन्तु अन्तमे क्षत्रियवश वच गया और परशुरामजीका वल क्षत्रियशरीरधारी भगवान् श्रीरामजीद्वारा हरा गया। राजा नहुषको पुण्यवलसे जव इन्द्रका सिंहासन प्राप्त हुआ, तव इन्द्रपत्नी शचीके साथ सम्भोगकी इच्छा करके नहुषने अधिकारका दुरुपयोग किया, जिसके फलस्वरूप सप्तर्षियोके शापसे उनको स्वर्गसे गिरना पड़ा और निरपराध शचीके सतीत्वकी रक्षा हो गयी। वेनने अपने अधिकारका दुरुपयोग करके धर्मका नाश करना आरम्भ किया; परन्तु धर्म तो नष्ट नही हुआ; ऋषियोके शापसे स्वयं वेनको ही मरना पड़ा। वृकासुर (भस्मासुर) शिवजीसे वरदान पाकर ऐसा वौराया कि उसने अपने वरदाता शिवजीको ही जला देना चाहा। अन्तमें भगवान् विष्णुकी चतुराईसे वह स्वयं जल गया) ॥४७२॥

नेमसे प्रेम बड़ा है

बड़ि प्रतीति गठिबंध तें बड़ो जोग तें छेम।
बड़ो सुसेवक साइँ तें बड़ो नेम तें प्रेम ॥४७३॥

भावार्थ—वाहरी ग्रन्थि-वन्धनकी अपेक्षा विश्वास वड़ा है। योग-

से क्षेम वड़ा है। स्वामीकी अपेक्षा श्रेष्ठ सेवक वड़ा है और नियमोंसे प्रेम वड़ा है ॥४७३॥

किस-किसका परित्याग कर देना चाहिये

सिष्य सखा सेवक सचिव सुतिय सिखावन साँच।
सुनि समुझिअ पुनि परिहरिअ पर मन रंजन पाँच ॥४७४॥

भावार्थ—यदि यह वात सुननेमे आवे कि अपना शिष्य, मित्र, नौकर, मन्त्री और सुन्दरी स्त्री—ये पाँचो मुझको छोडकर दूसरेके मनको प्रसन्न करने लगे है तो पहले तो इसकी जांच करनी चाहिये और [जाँच करनेपर यदि वात सत्य निकले तो] फिर इन्हे छोड देना चाहिये ॥४७४॥

सात वस्तुओंको रस विगड़नेसे पहले ही छोड़ देना चाहिये

नगर नारि भोजन सचिव सेवक सखा अगार।
सरस परिहरें रंग रस निरस विषाद विकार ॥४७५॥

भावार्थ—नगर, स्त्री, भोजन, मन्त्री, सेवक, मित्र और घर—इनकी सरसता नष्ट होनेसे पहले ही इन्हे छोड़ देनेमे शोभा और आनन्द है। नीरस होनेपर इनका त्याग करनेगे तो शोक और अशान्ति ही होती है ॥४७५॥

मनके चार कण्टक हैं

तूठहिं निज रुचि काज करि रूठहिं काज बिगारि।
तीय तनय सेवक सखा मन के कंटक चारि ॥४७६॥

भावार्थ—स्त्री, पुत्र, सेवक और मित्र जव अपनी रुचिके अनुसार कार्य करनेमे ही सन्तुष्ट होते है (अपनी रुचिके प्रतिकूल किसीकी

वात नही सुनते) और मनमानी करके आप ही काम विगाड़ लेते हैं तथा फिर रूठ भी जाते हैं, तव ये चारों मनको काँटेके समान चुभने लगते हैं ॥४७६॥

कौन निरादर पाते हैं ?

दीरघ रोगी दारिदी कटुबच लोलुप लोग ।
तुलसी प्रान समान तउ होहिं निरादर जोग ॥४७७॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि प्राणके समान प्यारे होनेपर भी वहुत दिनोके रोगी, दरिद्र, कटु वचन बोलनेवाले और लालची—ये चारो निरादरके योग्य हो जाते हैं ॥४७७॥

पाँच दुःखदायी होते हैं

पाही खेती लगन बट रिन कुब्याज मग खेत ।
बैर बड़े सों आपने किए पाँच दुख हेत ॥४७८॥

भावार्थ—पाही खेती (जिस गाँवमे रहते हों उससे दूर जाकर दूसरे गाँवमे खेती करना), राह चलते मनुष्यमें आसक्ति, बुरे, (वहुत अधिक) व्याजकी कर्जदारी, रास्तेपरका खेत और अपनी अपेक्षा बड़ेसे वैर—ये पाँचों काम करनेसे (अवश्य ही) दुःखके कारण होते है ॥४७८॥

समर्थ पापीसे वैर करना उचित नहीं

धाइ लगै लोहा ललकि खैंचि लेइ नइ नीचु ।
समरथ पापी सों बयर जानि बिसाही मीचु ॥४७९॥

भावार्थ—जिस तरह लोहा चावसे दौड़कर चुम्बकसे लग जाता है, उसी तरह नीच मनुष्य [कपटभरी] नम्रता प्रदर्शित कर खींच लेता है। इसी प्रकार समर्थ पापीसे वैर करनेको खरीदी हुई मौत समझो ॥ ४७९ ॥

शोचनीय कौन है

सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग ॥४८०॥

भावार्थ—वह गृहस्थ शोचनीय है, जो मोहवश शास्त्रोक्त कर्म-मार्गका त्याग कर देता है और वह सन्यासी शोचनीय है जो ससारमें आसक्त और ज्ञान-वैराग्यसे हीन है ॥ ४८० ॥

परमार्थसे विमुख ही अंधा

तुलसी स्वारथ सामुहो परमारथ तन पीठि।
अंध कहे दुख पाइहैं डिठिआरो केहि डीठि ॥४८१॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो मनुष्य स्वार्थके तो (सम्मुख) शरण हो रहा है और परमार्थकी ओर जिसने पीठ कर रक्खी है (अर्थात् भगवान्से विमुख होकर जो केवल विषयोमे रत है) वह अन्धा कहनेपर तो मनमे दु ख पायेगा, परंतु किस आँख-को लेकर उसे आँखवाला कहा जाय ? (अर्थात् आँख हुए विना उसे आँखवाला कहें भी कैसे ? हृदयमे विवेकरूपी असली आँख होती तो वह भगवान्के सम्मुख होनेमे ही अपना कल्याण देखता और भयंकर विषयोका मोह छोड़ देता) ॥ ४८१ ॥

मनुष्य आँख होते हुए भी मृत्युको नहीं देखते

बिन आँखिन की पानहीं पहिचानत लखि पाय ।
चारि नयन के नारि नर सूझत मीचु न माय ।।४८२।।

भावार्थ—बिना आँखवाली जूती पैरको देखकर पहचान लेती है; किंतु इन नर-नारियोके चार-चार आँखे (दो बाहरकी और मन-बुद्धिरूप दो भीतरकी) होनेपर भी इन्हे मौत और माया नही सूझती ! ।। ४८२ ।।

मूढ़ उपदेश नहीं सुनते

जौं पै मूढ़ उपदेश के होते जोग जहान ।
क्यों न सुजोधन बोध कै आए स्याम सुजान ।।४८३।।

भावार्थ—यदि मूर्ख मनुष्य संसारमे उपदेशके योग्य होते तो परम चतुर भगवान् श्रीकृष्ण दुर्योधनको क्यों न समझा सके ? ।। ४८३ ।।

सोरठा

फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद ।
मूरख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम ।।४८४।।

भावार्थ—यद्यपि बादल अमृत-सा जल बरसाते हैं तो भी बेंत फूलता-फलता नही । इसी प्रकार यदि ब्रह्माके समान भी [ज्ञानी] गुरु मिल जायें तो भी मूर्खके हृदयमे ज्ञान नही होता ।। ४८४ ।।

दोहा

रीझि आपनी बूझि पर खीझि बिचार बिहीन ।
ते उपदेस न मानहीं मोह महोदधि मीन ।।४८५।।

भावार्थ—अपनी ही समझ (बुद्धि) पर जिनकी प्रीति है (अपनी ही समझको जो सबसे उत्तम मानते हैं) और जिनका रोष नासमझीको लिये हुए होता है; वे मोहके महान् समुद्रमें मछली बने हुए लोग किसीका उपदेश नही मानते ॥ ४८५ ॥

बार-बार सोचनेकी आवश्यकता

अनसमुझें अनुसोचनो अवसि समुझिऐ आपु।
तुलसी आपु न समुझिऐ पल पल पर परितापु ॥४८६॥

भावार्थ—किसी बातको न समझनेपर उसे बार-बार सोचना चाहिये, ऐसा करनेसे वह बात अपने-आप समझमे आ जायगी। तुलसीदासजी कहते है कि वह स्वय समझमे नही आयी तो [उसके अनुसार आचरण करनेसे] क्षण-क्षणमे दु ख होगा ॥ ४८६ ॥

मूर्खशिरोमणि कौन है ?

कूप खनत मंदिर जरत आएँ धारि बबूर।
बवहिं नवहिं निज काज सिर कुमति सिरोमनि कूर ॥४८७॥

भावार्थ—जो लोग घर जलनेपर कुँआ खोदते हैं, शत्रुके चढ आनेपर [किले की रक्षाके लिये चारो ओर] बबूलके वृक्ष रोपना शुरू करते हैं और स्वार्थसाधनके लिये [भगवान्को छोडकर जहाँ-तहाँ] सिर नवाते फिरते हैं, वे मूर्खोंके शिरोमणि और निकम्मे (दीर्घसूत्री और प्रमादी) हैं ॥ ४८७ ॥

ईश्वरविमुखकी दुर्गति ही होती है

निडर ईस तें बीस कै बीस बाहु सो होइ।
गयो गयो कहैं सुमति सब भयो कुमति कह कोइ ॥४८८॥

भावार्थ—ईश्वरका डर छोडकर चाहे कोई बीसो बिस्वे (निश्चय ही) रावणके समान [प्रभावशाली] क्यो न हो जाय, बुद्धिमान् लोग तो उस ईश्वरविमुखको गया-गया ही (नष्ट ही हुआ) कहेंगे; कोई कुबुद्धिवाला ही उसे उन्नतिको प्राप्त हुआ बतलावेगा ॥ ४८८ ॥

जान-बूझकर अनीति करनेवालेको उपदेश देना व्यर्थ है

जो सुनि समुझि अनीति रत जागत रहै जु सोइ ।
उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होइ ॥४८९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो [सब बात] सुन-समझकर भी (जान-बूझकर) अनीतिमें लगा रहता है और जागते हुए भी सो रहता है, उसको उपदेश देना या जगाना उचित नही है अर्थात् व्यर्थ है ॥ ४८९ ॥

बहु सुत बहु रुचि बहु बचन बहु अचार ब्यवहार ।
इनको भलो मनाइबो यह अग्यान अपार ॥४९०॥

भावार्थ—जिनके बहुत पुत्र हों, जिनकी [भाँति-भाँतिकी] अनेकों इच्छाएँ हों, जो तरह-तरहकी बातें बनाते हो, जिनके आचरण और व्यवहार अनेको प्रकारके हो उनकी भलाई चाहना महान् मूर्खता है (अर्थात् उनका कल्याण होना बहुत ही कठिन है) ॥ ४९० ॥

जगत्‌के लोगोंको रिझानेवाला मूर्ख है

लोगनि भलो मनाव जो भलो होन की आस ।
करत गगन को गेंडुआ सो सठ तुलसीदास ॥४९१॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो आदमी [दूसरोंके
ारा] अपना भला होनेकी आशासे [भगवान्‌को छोडकर जगत्‌के]
ोगोको रिझाता रहता है, वह मूर्ख आकाशका तकिया बनाना
ाहता है ॥४९१॥

अपजस जोग कि जानकी मनि चोरी की कान्ह ।

तुलसी लोग रिझाइबो करषि कातिबो नान्ह ॥४९२॥

भावार्थ—क्या श्रीजानकीजी अपयशके योग्य थी और क्या
ीकृष्णने मणिकी चोरी की थी ? कदापि नहीं। अतएव तुलसी-
ासजी कहते है कि सब लोगोको प्रसन्न करना उतना ही कठिन
जितना जोरसे खीचकर बारीक सूत कातना ! ॥४९२॥

तुलसी जु पै गुमान को होतो कछू उपाउ ।

तौ कि जानकिहि जानि जियँ परिहरते रघुराउ ॥४९३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि लोगोके सन्देहको
र करनेका कोई उपाय होता तो क्या श्री रघुनाथजी श्रीजानकीजी-
ो अपने मनमे [सर्वथा निष्कलङ्क] जानते हुए भी उनका त्याग
रते ? ॥४९३॥

प्रतिष्ठा दुःखका मूल है

मागि मधुकरी खात ते सोवत गोड़ पसारि।

पाप प्रतिष्ठा बढ़ि परी ताते बाढ़ी रारि ॥४९४॥

भावार्थ—जबतक मधुकरी मांगकर खाते थे, तबतक पैर पसार-
ार (निश्चिन्त रूपसे) सोते थे। परन्तु इधर यह पापमयी प्रतिष्ठा
ढ़ गयी, इसीसे झगड़ा (झझट) भी बढ गया ॥४९४॥

तुलसी भेड़ी की धँसनि जड़ जनता सनमान ।

उपजत ही अभिमान भो खोवत मूढ़ अपान ॥४९५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि मूर्ख जनताका सम्मान भेड़ियाधँसानके समान है (जहाँ एकने बड़ाई की, वही सब करने लगते हैं) परन्तु इस सम्मानका मिलना शुरू होते ही अभिमान उत्पन्न हो जाता है, जिससे मूर्खलोग अपनी स्थिति खो बैठते हैं (अभिमानके वश होकर गिर जाते हैं) ॥४९५॥

भेड़ियाधँसानका उदाहरण

लही आँखि कब आँधरें बाँझ पूत कब ल्याइ।
कब कोढ़ी काया लही जग बहराइच जाइ ॥४९६॥

भावार्थ—दुनिया बहराइचको दौड़ी जाती है, परन्तु कोई इस बातका पता नही लगाता कि वहाँ जाकर कब किस अंधेने आँख पायी, कौन बाँझ कब लड़का लेकर आयी और कब किस कोढ़ीने कञ्चन-सी काया प्राप्त की ?

नोट—बहराइचमे सैयद सालारजग मसऊद गाजी (गाजीमियाँ) की दरगाह है। वहाँ जेठके महीनेमें हरसाल मेला होता है। वहाँ लोग अन्धविश्वासके कारण तरह-तरहकी कामनाओको लेकर जाते हैं। कहते हैं कि यह गाजीमियाँ महमूद गजनीका भानजा था। यह गाजी होनेकी इच्छासे अवधकी ओर बढ़ आया था और श्रावस्ती-के राजा सुहृददेवके हाथो मारा गया था ॥४९६॥

ऐश्वर्य पाकर मनुष्य अपनेको निडर मान बैठते हैं

तुलसी निरभय होत नर सुनिअत सुरपुर जाइ।
सो गति लखि ब्रत अछत तनु सुख संपति गति पाइ ॥४९७॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि सुना जाता है, स्वर्गमें जाकर जीव निर्भय हो जाता है (समझता है कि मैं बुढ़ापे और

बीमारीसे रहित होकर सदा ही भोग भोगता रहूँगा; क्योंकि स्वर्गमें बुढापा और बीमारी नहीं है)। परन्तु ऐसी दशा तो यहाँ इस शरीरके रहते भी सुख-सम्पत्ति और ऊँची पदवी पानेपर देखी जाती है (क्योंकि सुख-सम्पत्ति और ऊँचे पदको प्राप्त मनुष्य भी अभिमान-वश अपनेको निर्भय ही मानता है) [परन्तु वास्तवमें ऐसी बात नहीं है।] ॥४९७॥

तुलसी तोरत तीर तरु बक हित हंस बिडारि।
बिगत नलिन अलि मलिन जल सुरसरिहु बढ़िआरि ॥४९८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि गङ्गाजी भी बढ जानेपर अपने किनारेके (आश्रित) वृक्षोको तोड डालती है, बगुलों (दम्भियो) के लिये हसोको (सच्चे ज्ञानियोको) भगा देती है, कमल और भौरोसे (सद्गुणोसे) रहित और मलिन जलवाली (मलिनहृदया) हो जाती है। (अर्थात् पार्थिव ऐश्वर्य बढ जानेपर सज्जनोमे भी दोष आ जाते है। वे अभिमानमे भरकर पड़ोसी आश्रितोको मिटा देते हैं, मूर्खतावश सच्चे पुरुषोको अपने पाससे हटाकर दम्भियोको आश्रय देते है और कुसङ्गतिके कारण सद्गुणोसे रहित और पापजीवी हो जाते है।) ॥४९८॥

अधिकारी बस औसरा भलेउ जानिबे मंद।
सुधा सदन बसु बारहें चउथें चउथिउ चंद ॥४९९॥

भावार्थ—बुरा समय आनेपर भले अधिकारियोको भी बुरा ही समझिये। चन्द्रमा अमृतका भण्डार होनेपर भी आठवे, बारहवे और चौथे स्थानमे पडनेपर एव भादो सुदी चौथके दिन देखनेपर हानि-कारक हो जाता है ॥४९९॥

नौकर स्वामीकी अपेक्षा अधिक अत्याचारी होते हैं

त्रिबिध एक बिधि प्रभु अनुग अवसर करहिं कुठाट।
सूधे टेढ़े सम बिषम सब महँ बारहबाट ॥५००॥

भावार्थ—अवसर पड़नेपर मालिक यदि एक प्रकारसे बुराई करता है, तो उसके अनुगामी सेवक तीन प्रकारसे करते हैं। वे सीधे सज्जनोसे भी टेढ़ा वर्ताव करते है, समतामे भी विषमता करते हे और सब कामोको नष्ट-भ्रष्ट कर देते है ॥५००॥

प्रभुतें प्रभु गन दुखद लखि प्रजहि सँभारै राउ।
कर तें होत कृपानको कठिन घोर घन घाउ ॥५०१॥

भावार्थ—मालिककी अपेक्षा मालिकके परिचारकवर्ग विशेष दुःखदायी होते है; इस बातको विचारकर राजाको चाहिये कि वह स्वयं अपनी प्रजाकी सँभाल करे। क्योकि हाथकी चोटकी अपेक्षा हाथमें पकड़ी हुई तलवार की चोट बहुत ही कठिन और भयङ्कर होती है ॥५०१॥

ब्यालहु तें बिकराल बड़ ब्यालफेन जियँ जानु।
वहि के खाएँ मरत है वहि खाए बिनु प्रानु ॥५०२॥

भावार्थ—अपने हृदयमे अहिफेन (अफीम) को साँप (अहि) से भी अधिक भयङ्कर समझो। साँपके काटनेसे तो आदमी मरता ही है, परन्तु अफीमको खाकर वह [जीता हुआ भी] प्राणहीन (मुर्देकी भाँति) हो जाता है ॥५०२॥

कारन तें कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर ॥५०३॥

भावार्थ—[श्रीभरतजी महाराज अपनी कठोरताका विवेचन

करते हुए कहते हैं कि मैं जो इतना कठोर हूं, इसमे] मेरा दोष नही है; क्योकि कार्य कारणसे कठोर होता ही है जैसे [दधीचिकी] हड्डीसे बना हुआ वज्र हड्डीसे अधिक कठोर और पत्थरसे उत्पन्न लोहा पत्थरसे भी भयानक और कठोर होता है ॥ ५०३ ॥

काल बिलोकत ईस रुख भानु काल अनुहारि ।
रबिहि राउ राजहि प्रजा बुध ब्यवहरहि बिचारि ॥५०४॥

भावार्थ—काल (समय) ईश्वरका रुख देखता है (ईश्वरके इच्छानुसार बदलता रहता है), सूर्य कालका अनुगमन करता है (यथासमय कार्य करता), राजा सूर्यका अनुसरण करता है (सूर्यके यथायोग्य समयपर जल खीचने और बरसानेकी भांति राजा प्रजासे कररूपमे धन लेकर उसीके हितमे लगा देता है), प्रजा राजा का अनुकरण करती है (जैसा राजा वैसी प्रजा) और बुद्धिमान् पुरुष सब व्यवहार विचारकर करते है (वे अपनी बुद्धिका ही अनुसरण करते हैं) ॥ ५०४ ॥

जथा अमल पावन पवन पाइ कुसंग सुसंग ।
कहिअ कुबास सुबास तिमि काल महीस प्रसंग ॥५०५॥

भावार्थ—जैसे निर्मल और पवित्र वायु बुरी (दुर्गन्धयुक्त) और अच्छी (सुगन्धयुक्त) वस्तुओके ससर्गसे दुर्गन्धित और सुगन्धित कही जाती है, वैसे ही अच्छे या बुरे राजाके ससर्गसे काल भी अच्छा या बुरा कहा जाता है ॥ ५०५ ॥

भलेहु चलत पथ पोच भय नृप नियोग नय नेम ।
सुतिय सुभूपति भूषिअत लोह सँवारित हेम ॥५०६॥

भावार्थ—जिस प्रकार [सर्वोत्तम धातु] सोना लोहे [के हथौड़े] से पीट-पीटकर सँवारा जानेपर ही [गहना बनकर]

सुन्दर स्त्री और सुन्दर राजाको भी भूषित करता है, उसी प्रकार राजाकी [निष्पक्ष]आज्ञा, [स्वार्थरहित] नीति तथा [कड़ाईसे बर्ते जानेवाले न्यायपूर्ण] कानूनके कारण ही भले लोगोको भी बुरे मार्गमे चलनेमे डर लगता है ॥ ५०६ ॥

राजाको कैसा होना चाहिए ?

माली भानु किसान सम नीति निपुन नरपाल ।
प्रजा भाग बस होहिंगे कबहुँ कबहुँ कलिकाल ॥५०७॥

भावार्थ—माली, सूर्य और किसानके समान नीतिमे निपुण राजा इस कलियुगमे प्रजाके सौभाग्यसे कभी-कभी होगे [सदा नही]।

१—माली मुरझाये हुए पौधोको सीचता है, बढे हुए जबरदस्तोको काट-छाँटकर अलग कर देता है, झुके हुए (कमजोर) पौधोको लकड़ी का टेका देकर गिरनेसे बचा लेता है और फिर फल-फूलोका सग्रह करता है।

२—सूर्य किसीको भी प्रत्यक्षमें दुख न देकर समुद्र और नदीसे जल खीच लेता है, उसीको अमृत-सा बनाकर यथायोग बरसा देता है।

३—किसान खेत तैयार करता है, खाद देता है, बीज बोता है, सीचता है, रक्षा करता है फिर फसल पकनेपर काटता है ॥ ५०७ ॥

बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोइ ।
तुलसी प्रजा सुभाग ते भूप भानु सो होइ ॥५०८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि सूर्य जब जलको खीचता

है तव किसीको भी पता नही लगता, परतु जव वरसाता है तव सब लोग प्रसन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार [प्रजाको विना सताये—यहांतक कि कर देनेमे प्रजाको कुछ भी कष्ट न हो; इतना-सा कर उगाहकर—समयपर उसी धनसे व्यवस्थितरूपसे प्रजाका हित करनेवाला] सूर्य-सरीखा [कोई] राजा प्रजाके सौभाग्यसे ही होता है ॥५०८॥

राजनीति

सुधा सुजान कुजान फल आम असन सम जानि।
सुप्रभु प्रजा हित लेहिं कर सामादिक अनुमानि ॥५०९॥

भावार्थ—सुन्दर दूध, घी आदि अमृत, उत्तम अन्न, कुत्सित अन्न, लताओके फल, आम आदि पेडोके फल—इन सवको खाद्य रूपमे समान जानकर अच्छे राजा साम, दान आदि नीतियोके अनुसार प्रजाके हितकी इच्छासे प्रजासे 'कर' के रूपमे ग्रहण कर लेते हैं॥ ५०९ ॥

पाके पकए विटप दल उत्तम मध्यम नीच।
फल नर लहैं नरेस त्यों करि विचारि मन वीच ॥५१०॥

भावार्थ—उत्तम वह है जो वृक्षोके पके फल लेता है, मध्यम वह है जो [पकनेतककी वाट न देखकर] अधपके फल ही तोड़कर घरमे पकाता है और नीच वह है जो अधीर होकर पत्तोको ही नोच डालता है। इसी प्रकार उत्तम राजाको भी मनमें विचारकर तभी कर वसूल करना चाहिये, जव फसल पक जाय, जिससे कि किसान आसानीसे दे सके; जो विना ही फसल पके कर उगाहता है, वह मध्यम है और अकाल पडनेपर भी पीड़ा पहुँचाकर किसानसे कर उगाहनेवाला स्वार्थी राजा नीच है॥ ५१० ॥

रीझि खीझि गुरु देत सिख सखा सुसाहिब साधु।
तोरि खाइ फल होइ भल तरु काटें अपराधु ॥५११॥

भावार्थ—गुरु, मित्र, अच्छे मालिक और साधुजन प्रसन्न होकर या [न माननेपर हमारे हितके लिये] क्रुद्ध होकर यही उपदेश देते हैं कि पका फल ही पेडसे तोडकर खाना अच्छा है, पेडको काट डालना अपराध है [राजाको कर उगाहनेके समय यह उपदेश ध्यानमे रखना चाहिये] ॥ ५५१ ॥

धरनि धेनु चारितु चरत प्रजा सुबच्छ पेन्हाइ।
हाथ कछू नहिं लागिहै किएँ गोड़ की गाइ ॥५१२॥

भावार्थ—पृथ्वीरूपी गौ जब राजाके प्रजावत्सलता तथा धर्म-युक्त उत्तम चरित्ररूपी चारेको चरकर दुग्धवती होती है और जब प्रजारूपी सुन्दर बछड़ेके द्वारा चोखे जानेपर पेन्हाती है [तभी उत्तम और अधिक दूध मिलता है], सिर्फ पैर बाँधकर दुहनेसे कुछ भी दूध हाथ नही लगता ॥ ५१२ ॥

चढ़े बघूरें चंग ज्यों ग्यान ज्यों सोक समाज।
करम धरम सुख संपदा त्यों जानिबे कुराज ॥५१३॥

भावार्थ—जो दशा बवडरमे पडी हुई पतगकी और शोकोंके समूहमे पडे हुए विवेककी होती है (अर्थात् वे नष्ट हो जाते हैं) वही दशा बुरे राज्यमे [सत्] कर्म, [सनातन] धर्म और सुख-सम्पत्तिकी भी समझनी चाहिये ॥ ५१३ ॥

कंटक करि करि परत गिरि साखा सहस खजूरि।
मरहिं कुनृप करि करि कुनय सों कुचालि भव भूरि॥५१४॥

भावार्थ—जैसे खजूरकी हजारो शाखाएँ वृक्षमें बहुतेरे

काँटे बना-बनाकर (स्वयं टूट-टूटकर) गिर पड़ती है, उसी प्रकार दुष्ट राजा भी अपनी दुष्ट नीतिमें कुचाल कर-करके संसारमें बार-बार जन्मते-मरते हैं ॥५१४॥

काल तोपची तुपक महि दारू अनय कराल ।
पाप पलीता कठिन गुरु गोला पुहुमी पाल ॥५१५॥

भावार्थ—काल (समय) ही गोलदाज हैं, पृथ्वी ही तोप है, विकराल अनीति ही बारूद है, पाप ही पलीता है और राजा ही कठोर तथा भारी गोला है (अर्थात् बुरा समय ही दुष्ट राजाके द्वारा प्रजाका नाश कराता है) ॥५१५॥

किसका राज्य अचल हो जाता है ?

भूमि रुचिर रावन सभा अंगद पद महिपाल ।
धरम राम नय सीय बल अचल होत सुभ काल ॥५१६॥

भावार्थ—पृथ्वी ही रावणकी सुन्दर सभा है, इसमें राजा ही अङ्गदका पैर है, धर्मरूपी राम और नीतिरूपी सीताके बलसे ही वह राजारूपी अङ्गदका पैर शुभ समयमें अचल हो जाता है ॥५१६॥

प्रीति राम पद नीति रति धरम प्रतीति सुभायँ ।
प्रभुहि न प्रभुता परिहरै कबहुँ बचन मन कायँ ॥५१७॥

भावार्थ—भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें जिसकी प्रीति है, [प्रजाहितकी] नीतिमें जो सदा रत है और धर्ममें जिसका स्वाभाविक ही विश्वास है, उस राजाको प्रभुता मन, वचन और शरीरसे कभी नहीं छोड़ती (अर्थात् उसका राज्य सदा बना रहता है) ॥५१७॥

कर के कर मन के मनहिं बचन बचन गुन जानि ।
भूपहि भूलि न परिहरै बिजय बिभूति सयानि ॥५१८॥

भावार्थ—जिस राजाके हाथमें हाथके गुण (रक्षा करना, दान देना आदि) हों, मनमें मनके गुण (प्रजावत्सलता, उदारता आदि) हों और वचनमें वचनके गुण (मधुरता, सत्यता, हितवादिता आदि) हों उस राजाको विजय, ऐश्वर्य और बुद्धिमत्ता भूलकर भी नहीं छोड़ते ॥५१८॥

गोली बान सुमंत्र सर समुझि उलटि मन देखु ।
उत्तम मध्यम नीच प्रभु बचन बिचारि बिसेषु ॥५१९॥

भावार्थ—गोली, साधारण वाण और सुमन्त्रित वाण [के गुणो] को मनमें समझकर और फिर इनके क्रमको उलटकर देखो और विचार करो कि उत्तम, मध्यम और नीच राजाके वचन क्रमशः ऐसे ही होते हैं, (अर्थात् उत्तम राजाके वचन सुमन्त्रित वाणके समान अमोघ है, जो कभी व्यर्थ नही जाते; मध्यम राजाके वचन साधारण बाणके समान है जो व्यर्थ भी जा सकते है और नीच राजाके वचन गोलीके समान होते हैं—उनका शब्द तो वहुत विकराल होता है, परंतु निशाना चूक गया तो काम कुछ भी नही होता) ॥५१९॥

सत्रु सयानो सलिल ज्यों राख सीस रिपु नाव ।
बूढ़त लखि पग डगत लखि चपरि चहूँ दिसि धाव॥५२०॥

भावार्थ—चतुर शत्रु पानीके समान शत्रुरूपी नावको सिरपर रखता है (शत्रुका ऊपरसे वडा सत्कार करता है), परंतु उसको डूवते हुए देखकर या पैर डगमगाते हुए देखकर तुरत ही चारों ओरसे उसपर धावा कर देता है ॥५२०॥

रैंअत राज समाज घर तन धन धरम सुबाहु ।
सांत सुसचिवन सौंपि सुख बिलसइ नित नरनाहु ॥५२१॥

भावार्थ—प्रजा, राजसमाज, घर, अपना शरीर, धन, धर्म और सेना आदिको शान्त और सुयोग्य मन्त्रियोंके हाथोंमें सौंपकर ही राजा नित्य सुखसे रह सकता है (अर्थात् जहाँ मन्त्री शान्त और योग्य नही होते, वहाँ राजा सुखसे नही रह सकता) ॥५२१॥

मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक ।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित विवेक ॥५२२॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रधान (राजा) को मुखके समान होना चाहिये, जो खाने-पीनेके लिये तो एक ही है, परंतु विवेकके साथ समस्त अङ्गोंका पालन-पोषण करता है ॥५२२॥

सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ ।
तुलसी प्रीति की रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ॥५२३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि सेवक हाथ, पैर और नेत्रोंके समान होने चाहिये और मालिक मुखके समान होना चाहिये। सेवक-स्वामीकी प्रीतिकी रीतिको सुनकर सुकवि उसकी सराहना करते हैं। (अर्थात् जैसे हाथ, पैर, आँख आदि खाद्य सामग्रियोंके संग्रहमें और विपत्ति पडने पर रक्षा करनेमें सहायता करते हैं, उसी प्रकार सेवककी मालिकको सहायता करनी चाहिये। और जैसे मुख सब पदार्थोंको खाता है, परंतु खाकर सब अङ्गोंको यथायोग्य रस पहुँचाता है और उन्हें पुष्ट करता है उसी प्रकार मालिकको सबका पेट भरकर उन्हें शक्तिमान् बनाना चाहिये ॥५२३॥

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास ॥५२४॥

भावार्थ—यदि मन्त्री, वैद्य और गुरु [अप्रसन्नताके] भयसे या [स्वार्थसाधनकी] आशासे [हितकी बात न कहकर] 'हाँ' में 'हाँ' मिलाने लगते हैं तो राज्य, धर्म और शरीर—इन तीनोका शीघ्र ही नाश हो जाता है ॥५२४॥

रसना मंत्री दसन जन तोष पोष निज काज।
प्रभु कर सेन पदादिका बालक राज समाज ॥५२५॥

भावार्थ—राजा पेट है, मन्त्री जीभ है और अन्य कर्मचारी दाँत हैं। जैसे दाँत भोजनको कुचलकर और जीभ उसका स्वाद लेकर तथा अपनी लार साथ लेकर उसे पेटमें पहुँचा देती है और पेट रस बनाकर सारे अङ्गोको पुष्ट और संतुष्ट करता है, उसी प्रकार मन्त्री और अन्य राजकर्मचारी राजाके लिये सब अपना-अपना काम ठीक करते हैं और बदलेमें राजा उन सबका पोषण करता है और उन्हें संतुष्ट करता है। सेना और पदातिजन राजाके हाथ और पैर हैं। जैसे हाथ-पैर पेटकी रक्षा करते है और पेट हाथ-पैरको पालता-पोषता है, उसी प्रकार सेना-पदाति राजाकी रक्षा करते हैं और राजा उनका पालन-पोषण करता है। फिर राजा माता-पिताके समान है और सारा राज-समाज राजाका बालक है। जैसे माता-पिता बालकका पालन-पोषण करते हैं, वैसे ही राजा सारे राजसमाजको पालता-पोषता है ॥५२५॥

लकड़ी डौआ करछुली सरस काज अनुहारि।
सुप्रभु संग्रहहिं परिहरहिं सेवक सखा बिचारि ॥५२६॥

भावार्थ—जिस तरह कामकी सरसताके अनुसार लकड़ीके चम्मच या धातुकी करछूलका यथायोग्य सग्रह और त्याग किया जाता है (कही लकडीके चम्मचसे काम लिया जाता है तो कहीं उसका त्याग करके धातुकी करछुलीकी ही जरूरत पड़ती है) उसी प्रकार अच्छे स्वामी भी विचार करके सव प्रकारके सेवको तथा मन्त्राओंका यथायोग्य सग्रह और त्याग करते हैं ॥५२६॥

प्रभु समीप छोटे वड़े रहत निवल वलवान।
तुलसी प्रकट विलोकिऐ कर अँगुली अनुमान ॥५२७॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि मालिकके निकट छोटे, वड़े, निर्वल और वलवान्—सभी प्रकारके लोग रहते हैं। हाथकी अँगुलियोंसे अनुमान करके इस वातको प्रत्यक्ष देख लेना चाहिये (पाँचो अँगुलियाँ एक ही हाथमे है, परतु वरावरकी नही हैं) ॥५२७॥

आज्ञाकारी सेवक स्वामीसे बड़ा होता है

साहब तें सेवक वड़ो जो निज धरम सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि लाँघि गए हनुमान ॥५२८॥

भावार्थ—वह सेवक स्वामीसे वडा है, जो अपने धर्मपालनमे निपुण है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तो पुल वांधकर समुद्रके पार उतरे, परंतु हनुमान्जी उसी समुद्रको लांघकर चले गये ॥५२८॥

मूलके अनुसार बढ़नेवाला और विना अभिमान किये सबको सुख देनेवाला पुरुष ही श्रेष्ठ है

तुलसी भल बरतरु वढ़त निज मूलहि अनुकूल।
सबहि भाँति सब कहँ सुखद दलनि फलनि विनु फूल।५२९।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि बडका वृक्ष उत्तम है, जो अपनी जड (बुनियाद) के अनुसार ही बढता है और बिना ही फूले (घमड किये विना ही) अपने पत्तो और फलोद्वारा सवको सव प्रकारसे सुख देता है ॥५२९॥

त्रिभुवनके दीप कौन हैं ?

सधन सगुन सधरम सगन सबल सुसाइँ महीप ।
तुलसी जे अभिमान बिनु ते तिभुवन के दीप ॥५३०॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि जो पुरुष धनवान्, गुणवान्, धर्मात्मा सेवकोसे युक्त, बलवान् और सुयोग्य स्वामी तथा राजा होते हुए भी अभिमानरहित होते हैं, वे ही तीनो लोकोके उजागर होते हैं ॥५३०॥

कीर्ति करतूतिसे ही होती है ।

तुलसी निज करतूति बिनु मुकुत जात जब कोइ ।
गयो अजामिल लोक हरि नाम सक्यो नहिं धोइ ॥५३१॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि कोई जीव अपने पुरुषार्थके बिना ही मुक्त हो जाता है [तो उसकी कीर्ति नही होती] अजामिल श्रीहरिके लोकको चला गया, परन्तु वह अपनी बदनामीको नही धो सका (अब भी उसकी उपमा लोग पापियोसे ही देते हैं) ॥५३१॥

बड़ोंका आश्रय भी मनुष्यको बड़ा बना देता है

बड़ो गहे ते होत बड़ ज्यों बावन कर दंड ।
श्रीप्रभु के सँग सों बढ़ो गयो अखिल ब्रह्मंड ॥५३२॥

भावार्थ—बडेके अपनानेसे भी मनुष्य बडा हो जाता है, जैसे वामन भगवान्‌के हाथका दण्ड उनके साथ ही बढ़कर अखिल ब्रह्माण्डतक पहुँच गया ॥५३२॥

कपटी दानीकी दुर्गति

तुलसी दान जो देत हैं जल मे हाथ उठाइ।
प्रतिग्राही जीवै नहीं दाता नरकै जाइ ॥५३३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं—जो लोग हाथ उठाकर [मछलियोको फाँसनेके लिये] जलमे दान देते हैं (चारा डालते है), उस दानको ग्रहण करनेवाली मछली तो जीती नही और वह दाता भी नरकमें जाता है ॥५३३॥

अपने लोगों के छोड़ देनेपर सभी वैरी हो जाते हैं

आपन छोड़ो साथ जब ता दिन हितू न कोइ।
तुलसी अंबुज अंबु बिनु तरनि तासु रिपु होइ ॥५३४॥*

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है—जिस दिन अपने ही लोग अपना साथ छोड़ देते है, उस दिन कोई भी हित करनेवाला नही रह जाता [सूर्य कमलका मित्र है, परन्तु] जब जल कमलका साथ छोड़ देता है, तब वही सूर्य कमलका वैरी बनकर उसे जला डालता है ॥५३४॥

---

* श्रीरामचरितमानसमे भी इसी भावकी एक अर्द्धाली मिलती है—
भानु कमल कुल पोषनिहारा। बिनु जल जारि करइ तेहि छारा।

साधनसे मनुष्य ऊपर उठता है और साधन बिना गिर जाता है

उरबी परि कलहीन होइ ऊपर कलाप्रधान ।
तुलसी देखु कलाप गति साधन धन पहिचान ।।५३५।।

भावार्थ—मोरकी पाँख जब जमीनकी ओर नीचे पडी रहती है, तो वह कलाहीन हो जाती है और वही जब ऊपरको होती है तो कलाप्रधान हो जाती है (जगमगा उठती है)। तुलसीदासजी कहते है कि मोरकी पाँखकी गति देखो और समझो कि मेघ ही इसमे प्रधान साधन है (तात्पर्य यह कि मोरपखकी गतिको समझकर तुम भी प्रेमघन घनश्याम श्रीरामजीके प्रेमको पहचानकर नाच उठो) ।।५३५।।

सज्जनको दुष्टोंका संग भी मंगलदायक होता है

तुलसी संगति पोच की सुजनहि होति म-दानि ।
ज्यों हरि रूप सुताहि तें कीनि गोहारी आनि ।।५३६।।

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि सज्जनके लिये नीचकी सङ्गति भी मङ्गलदायिनी होती है। जैसे विष्णुरूप बने हुए वढईसे विवाह करनेवाली राजकन्याकी पुकार सुनकर साक्षात् भगवान् विष्णुने आकर सहायता की ।

[एक राजकन्याने भगवान् विष्णुके साथ विवाह करनेकी प्रतिज्ञा की थी। एक चालाक वढईने काठके दो हाथ जोड़कर विष्णुका रूप वनाया और उस राजकन्यासे विवाह कर लिया। एक वार राजकन्याके पितापर कुछ विपत्ति आयी, तव पिताके कहनेसे कन्याने भगवान् विष्णुसे प्रार्थना की और कहा कि मैं

तो आपको ही वरना चाहती थी, वढईने तो धोकेमें मुझको विवाह लिया; अतएव इस समय आप ही मेरे पिताकी रक्षा कीजिये। भगवान् विष्णुने कन्याकी सरल और सत्य प्रार्थनाको स्वीकार करके उसके पिताको विपत्तिसे मुक्त किया।] ॥५३६॥

कलियुगमें कुटिलताकी वृद्धि

कलि कुचालि सुभ मति हरनि सरलै दंडै चक्र।
तुलसी यह निहचय भई वाढ़ि लेति नव वक्र ॥५३७॥

भावार्थ—कलियुगकी कुचाल शुभ बुद्धिको हरनेवाली है, इसीलिये राजचक्र भी सरलस्वभावके साधुओंको ही दण्ड देता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह निश्चय हो गया कि कलियुगमें कुटिलता नित नयी-नयी वढ रही है ॥५३७॥

आपसमें मेल रखना उत्तम है

गो खग खे खग बारि खग तीनों माँहि बिसेक।
तुलसी पीवैं फिरि चलैं रहैं फिरैं सँग एक ॥५३८॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि पृथ्वी, आकाश और जलमें रहनेवाले तीनो प्रकारके पक्षियोमे यह विशेषता है कि वे सब अपने-अपने दल वनाकर एक ही साथ पानी पीते है, चलते-फिरते हैं और रहते हैं (मनुष्योको इनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये) ॥५३८॥

सब समय समतामें स्थित रहनेवाले पुरुष ही श्रेष्ठ हैं

साधन समय सुसिद्धि लहि उभय मूल अनुकूल।
तुलसी तीनिउ समय सम ते महि मंगल मूल ॥५३९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि वे ही लोग इस पृथ्वीपर मङ्गल-मूल होते हैं, जो [मनोरथ सिद्धिके] अनुकूल साधन और अनुकूल समय तथा इन दोनोके मूल उद्देश्यरूप सुन्दर सिद्धिको प्राप्त करके भी तीनो कालमे एकरस—समता-युक्त रहते हैं ॥५३९॥

जीवन किनका सफल है?

मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जाय ॥५४०॥

भावार्थ—जो लोग माता, पिता, गुरु और स्वामीकी शिक्षाको स्वभावसे ही सिर चढ़ाकर उसका पालन करते हैं, उन्हीने जन्म लेनेका लाभ पाया है, नही तो जगत्मे जन्म लेना व्यर्थ ही है ॥५४०॥

पिताकी आज्ञाका पालन सुखका मूल है

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन ॥५४१॥

भावार्थ—जो पुरुष अनुचित-उचितका विचार छोड़कर (श्रद्धापूर्वक) पिताके वचनोंका पालन करते है वे [यहाँ] सुख और सुकीर्तिके पात्र होकर [शरीर छोड़नेके पश्चात्] इन्द्रपुरीमे निवास करते हैं ॥५४१॥

स्त्रीके लिए पतिसेवा ही कल्याणदायिनी है

सोरठा

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥५४२॥

भावार्थ—स्त्री जन्मसे ही अपवित्र है, किंतु पतिसेवा करनेसे वह [अनायास ही] शुभ गतिको प्राप्त होती है। पतिव्रता स्त्री वृन्दाका यश चारो वेद गाते है और आज भी वह तुलसीके रूपमे श्रीहरिकी प्रिया बनी हुई है ॥५४२॥

शरणागतका त्याग पापका मूल है

दोहा

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि ॥५४३॥

भावार्थ—जो शरणागतकी रक्षा करनेमे अपना अहित सोचकर उसका त्याग कर देते है, वे मनुष्य पामर (क्षुद्र) और पापमय हैं और उनका मुख देखनेसे भी हानि होती है ॥५४३॥

तुलसी तृन जलकूलको निरबल निपट निकाज।
कै राखै कै सँग चलै बाँह गहे की लाज ॥५४४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि नदीतटका तृण अत्यन्त ही निर्बल और निकम्मा होता है, परतु [कोई डूबनेवाला आदमी उसे पकड़ लेता है तो] वह भी अपनी बाँह पकडनेकी लाजके कारण या तो उस शरणागतको बचा लेता है; अथवा [उसके बचानेकी चेष्टामे] स्वय ही उखडकर उसके साथ बह जाता है ॥५४४॥

कलियुगका वर्णन

रामायन अनुहरत सिख जग भयो भारत रीति।
तुलसी सठ की को सुनै कलि कुचालि पर प्रीति ॥५४५॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि कलिकालमे लोगोंकी प्रीति

कुचालपर ही रहती है; मुझ-जैसे मूर्खकी कौन सुनता है। लोगोको सीख तो यह दी जाती है कि रामायणके अनुसार चलो (अर्थात् स्वार्थत्यागपूर्वक भाई-भाईमे प्रेम रक्खो), परन्तु ससारमे लोग अनुकरण करते है महाभारतका (अर्थात् स्वार्थवश परस्पर कलहमें ही लगे रहते हैं) ॥५४५॥

पात पात कै सींचिबो बरी बरी कै लोन।
तुलसी खोटें चतुरपन कलि डहके कहु को न ॥५४६॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते है कि कलियुगमें लोग पेडके एक-एक पत्तेको अलग-अलग सीचना और एक-एक वरामें अलग अलग नमक मिलाना चाहते है (जिससे न तो पेडकी जड़में जल पहुँचता है और न सब वरियोमे समान नमक पड़ता है) ऐसी हालतमें कहिये अपनी इस खोटी चतुराईसे कलियुगमें कौन नही ठगे गये (अपनी ही करनीसे आप ही दु ख पाते हैं) ॥५४६॥

प्रीति सगाई सकल बिधि बनिज उपायँ अनेक।
कल बल छल कलि मल मलिन डहकत एकहि एक ॥५४७॥

भावार्थ—कलियुगके पापोसे मलिन-मन हुए लोग प्रीति करके नाता जोड़कर वाणिज्य आदि अनेक उपायोसे सब प्रकार कल-बल-छल करके परस्पर एक-दूसरेको ठगा करते हैं ॥५४७॥

दंभ सहित कलि धरम सब छल समेत ब्यवहार।
स्वारथ सहित सनेह सब रुचि अनुहरत अचार ॥५४८॥

भावार्थ—कलिके धर्म सव दम्भयुक्त है, व्यवहार कपटयुक्त हैं, प्रेम स्वार्थयुक्त हैं और आचरण मनमाना है (अर्थात् सच्चा धर्म, निष्कपट व्यवहार, निःस्वार्थ प्रेम और शास्त्रोक्त आचरण नही है) ॥५४८॥

चोर चतुर बटमार नट प्रभु प्रिय भँडुआ भंड ।
सब भच्छक परमारथी कलि सुपंथ पाषंड ॥५४९॥

भावार्थ—कलियुगमें चोर ही चतुर माने जाते हैं (अर्थात् जो सफाईसे दूसरोका स्वत्व हरण कर लेते हैं, उन्हीको लोग चतुर कहते है), लुटेरे ही खिलाड़ी (कलावन्त) गिने जाते हैं (जो मार-पीटकर धन छीन लेते है, उनको खिलाडी कहा जाता है), भांट और भड़ुए ही राजाओ या मालिकोको प्रिय होते हैं (जो खुशामद करके या तरह-तरहकी भाव-भगियोंसे मूर्ख मालिकोको रिझाते रहते हैं, वे ही उन्हे प्रिय होते हैं; सत्यवादी सदाचारी नही); खान पानका विचार त्यागकर सब कुछ खानेवाले ही महात्मा माने जाते हैं और पाखण्ड ही सन्मार्ग समझा जाता हैं अर्थात् सभी विपरीत हो रहा है ॥५४९॥

असुभ वेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं ।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं ॥५५०॥

भावार्थ—जो लोग अशुभ वेप वनाये रहते हैं—अशुभ अलंकार धारण करते हैं तथा खानेयोग्य और न खानेयोग्य सब कुछ खा जाते है—इस कलियुगमें वे ही मनुष्य योगी है, वे ही सिद्ध हैं और वे ही पूज्य है ॥५५०॥

सोरठा

जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ ।
मन क्रम बचन लबार ते बकता कलिकाल महुँ ॥५५१॥

भावार्थ—जो अपने आचरणसे दूसरोका बुरा करनेवाले हैं, कलियुगमे उन्हीका गौरव है और वे ही मानके योग्य हैं एवं जो मन, वचन तथा कर्मसे झूठे होते हैं, वे ही वक्ता माने जाते हैं ॥५५१॥

दोहा

ब्रह्मग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात ।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात ॥५५२॥

भावार्थ—इस कलियुगमे स्त्री-पुरुष ब्रह्मज्ञानको छोड़कर दूसरी चर्चा ही नही करते, किंतु वे ही [मिथ्या ब्रह्मज्ञानी] लोभवश एक कौड़ीके लिये ब्राह्मण और गुरुजनोका घात कर डालते हैं [और कहते हैं कि कौन मरता है, कौन मारता है] ॥५५२॥

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि ।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर आँखि देखावहिं डाटि ॥५५३॥

भावार्थ—कलियुगमे शूद्रलोग ब्राह्मणोंसे वाद-विवाद करते हैं, और आँख दिखाकर डाँटते हुए कहते हैं कि 'क्या हम तुमसे कुछ कम है जो ब्रह्मको जानता है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं' ॥५५३॥

साखी सबदी दोहरा कहि कहनी उपखान ।
भगति निरूपहिं भगत कलि निंदहिं बेद पुरान ॥५५४॥

भावार्थ—कलियुगमे (कलियुगी) भक्तलोग मनमानी साखी, शब्द, दोहा, कहानी और उपाख्यान कह-कहकर भक्तिका निरूपण करते हैं और प्रामाणिक वेद-पुराणोकी निन्दा करते है ॥५५४॥

श्रुति संमत हरिभगति पथ संजुत बिरति बिबेक ।
तेहि परिहरहिं बिमोह बस कल्पहिं पंथ अनेक ॥५५३॥

भावार्थ—वैराग्य और ज्ञानसे युक्त वेदोक्त हरिभक्तिके मार्गको तो लोग विशेषरूपसे मोहके वशमें होकर छोड देते है और नये-नये (ज्ञान-वैराग्यहीन) मनमाने मार्गोकी कल्पना करते है ॥५५५॥

सकल धरम विपरीत कलि कल्पित कोटि कुपंथ।
पुन्य पराय पहार बन दुरे पुरान सुग्रंथ ॥५५६॥

भावार्थ—कलियुगमें सभी कुछ धर्मके प्रतिकूल हो गया, नये-नये करोड़ों कुमार्ग कल्पित हो गये (वास्तवमें वे मार्ग नहीं हैं मनमानी कल्पनामात्र हैं)। इससे पुण्य तो पहाड़ोंमें भाग गया और पुराणादि सद्ग्रन्थ वनोंमें जाकर छिप गये (अर्थात वनोंमें और पर्वतोंकी गुहाओंमें एकान्तवास करनेवाले कुछ महात्माओंमें ही पुण्य और सद्ग्रन्थोंका पठन-पाठन रह गया है) ॥५५६॥

धातुबाद निरुपाधि बर सदगुरु लाभ सुमीत।
देव दरस कलिकाल में पोथिन दुरे सभीत ॥५५७॥

भावार्थ—कलियुगमें रसायनविद्या, उपाधिरहित (अबाधित) वरदान, सद्गुरुकी प्राप्ति, सच्चे मित्र और देवताके प्रत्यक्ष दर्शन—ये पाँचों बातें डरके मारे पुस्तकोंमें छिप गयी हैं (अर्थात् पुस्तकोंहीमें इनके वर्णन मिलते हैं, प्रत्यक्षमें ये दिखलायी नहीं देते) ॥५५७॥

सुर सदननि तीरथ पुरिन निपट कुचालि कुसाज।
मनहुँ मवा से मारि कलि राजत सहित समाज ॥५५८॥

भावार्थ—देवालय (मन्दिर), तीर्थ और पवित्र पुरियोंमें सर्वत्र ही अत्यन्त भ्रष्टाचार और भ्रष्ट वातावरण फैल गया है। मानो उन स्थानोंमें कलियुग अपने सारे समाजके (काम, क्रोध दम्भ, लोभ, कपट, दुराग्रह, असत्य, हिंसा, स्तेय, व्यभिचार आदि दोषों एवं दुर्गुणोंके) साथ किलेबंदी करके विराजमान रहता है ॥५५८॥

गोंड़ गवाँर नृपाल महि जमन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि केवल दंड कराल ॥५५९॥

भावार्थ—कलियुगमें गोंड (जंगली लोग) और गँवार तो पृथ्वीके राजा हो रहे हैं और यवन-म्लेच्छादि बादशाह। इनकी राजनीतिमें साम, दान, भेदका प्रयोग न होकर केवल कठोर दण्डका ही प्रयोग होता है ॥५५९॥

फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागें अढुक पहार।
कायर कूर कुपूत कलि घर घर सहस डहार ॥५६०॥

भावार्थ—जैसे पहाड़की ठोकर लगनेपर [उसपर कुछ भी वश न चलनेसे] मूर्ख लोग [पहाड़के बदले] घरके सिल-लोढ़ेको फोड़ डालते है। इस प्रकार अपने ही घरवालोको तंग करनेवाले कायर, क्रूर और कुपूत कलियुगमे सहस्रोंकी संख्यामें घर-घर होंगे ॥५६०॥

प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करन कल्यान ॥५६१॥

भावार्थ—सत्य, अहिंसा, शौच और दान—धर्मके ये चार चरण प्रसिद्ध हैं, जिनमे से कलियुगमें एक (दान) ही प्रधान रह गया है, जिस किसी भी प्रकारसे दिये जानेपर दान कल्याण ही करता है ॥५६१॥

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिश्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास ॥५६२॥

भावार्थ—यदि मनुष्य विश्वास करे तो कलियुगके समान और कोई भी युग नही है; क्योकि इसमे केवल श्रीरामचन्द्रजीके निर्मल गुणसमूहोका गान करके ही मनुष्य विना ही किसी परिश्रमके भवसागरसे तर जाता है ॥५६२॥

और चाहे जो भी घट जाय, भगवान्‌से प्रेम नहीं घटना चाहिये

श्रवन घटहुँ पुनि दृग घटहुँ घटउ सकल बल देह।
इते घटें घटिहै कहा जौं न घटै हरिनेह॥५६३॥

भावार्थ—कानोंसे चाहे कम सुनायी पड़े, आँखोंकी रोशनी भी चाहे घट जाय, सारे शरीरका बल भी चाहे क्षीण हो जाय, किन्तु यदि श्रीहरिमें प्रेम नहीं घटे तो इनके घटनेमें हमारा क्या घट जायगा? ॥५६३॥

कुसमयका प्रभाव

तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं हमें पूछिहै कौन॥५६४॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि बरसातकी मौसममें कोयल यह समझकर मौन हो जाती है कि अब तो मेढक टर्रायेंगे, हमें कौन पूछेगा? (बुरा समय आनेपर दुर्जनोंकी ही चलती है, उस समय सज्जन चुप हो रहते हैं) ॥५६४॥

श्रीरामजीके गुणों की महिमा

कुपथ कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाषंड।
दहन राम गुन ग्राम जिमि इंधन अनल प्रचंड॥५६५॥

भावार्थ—कलियुगके कुमार्ग, कुतर्क, कुचाल, कपट, दम्भ और पाखण्डको जलानेके लिए श्रीरामचन्द्रजीके गुणसमुदाय वैसे ही हैं, जैसे ईंधनको जलानेके लिये प्रचण्ड अग्नि॥५६५॥

कलियुगमें दो ही आधार हैं

सोरठा

कलि पाषंड प्रचार प्रबल पाप पावँर पतित ।
तुलसी उभय अधार राम नाम सुरसरि सलिल ॥५६६॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि कलियुगमें केवल पाखण्डका प्रचार है; ससारमें पाप बहुत प्रवल हो गया है, सब ओर पामर और पतित ही नजर आते हैं। ऐसी स्थितिमे दो ही आधार हैं—एक श्रीरामनाम और दूसरा देवनदी श्रीगङ्गाजीका पवित्र जल ॥५६६॥

भगवत्प्रेम ही सब मंगलोंकी खान है

दोहा

रामचंद्र मुख चंद्रमा चित चकोर जब होइ ।
राम राज सब काज सुभ समय सुहावन सोइ ॥५६७॥

भावार्थ—जिस समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके मुखचन्द्रको निरखने के लिये चित्त चकोर वन जाता है, वही समय रामराज्यकी भाँति सुहावना होता है और तभी सब काम शुभ होते है ॥५६७॥

बीज राम गुन गन नयन जल अंकुर पुलकालि ।
सुकृती सुतन सुखेत बर बिलसत तुलसी सालि ॥५६८॥

भावार्थ—जब परम पुण्यात्मा पुरुषके [पापरहित] निर्मल तनुरूपी सुन्दर और श्रेष्ठ खेतमें श्रीरामचन्द्रजीके गुणसमूहरूपी वीज बोये जायँ और प्रेमाश्रुओके [पवित्र] जलसे उन्हें सींचा जाय, तुलसीदासजी कहते है कि तव उनमेसे [आनन्दातिरेकके

कारण] पुलकावलिरूपी [शुभ] अङ्कुर उत्पन्न होते हैं और तभी उसमें [भगवत्प्रेमरूपी] धानकी खेती लहलहाती है ॥५६८॥

तुलसी सहित सनेह नित सुमिरहु सीता राम ।
सगुन सुमंगल सुभ सदा आदि मध्य परिनाम ॥५६९॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि नित्य-निरन्तर भगवान् श्रीसीतारामजीके सुन्दर सगुण स्वरूपका प्रेमसहित स्मरण-ध्यान करते रहो; इससे आदि, मध्य और अन्तमें सदा ही अच्छे शकुन, परम मङ्गल और कल्याण होगा ॥५६९॥

पुरुषारथ स्वारथ सकल परमारथ परिनाम ।
सुलभ सिद्धि सब साहिबी सुमिरत सीता राम ॥५७०॥

भावार्थ—श्रीसीतारामजीका स्मरण करते ही मनुष्यके लिये सभी सिद्धियाँ और सबपर स्वामित्व सुलभ हो जाते हैं। तथा सभी तरहके स्वार्थ (लौकिक कार्य), पुरुषार्थ (आध्यात्मिक कार्य) सफल होते है और अन्तमे परमार्थ (श्रीभगवान्) की प्राप्ति होती है ॥५७०॥

दोहावलीके दोहोंकी महिमा

मनिमय दोहा दीप जहँ उर घर प्रगट प्रकास ।
तहँ न मोह तम भय तमी कलि कज्जली बिलास ॥५७१॥

भावार्थ—जिसके हृदयरूपी घरमें इन दोहोंरूपी मणिमय दीपकका प्रकाश प्रकट होगा, वहाँ मोहरूपी अन्धकार, भयरूपी रात्रि और कलिकालरूपी कालिमाका विलास नहीं हो सकता ॥५७१॥

का भाषा का संसकृत प्रेम चाहिऐ सांच ।
काम जु आवै कामरी का लै करिअ कुमाच ? ॥५७२॥

भावार्थ—क्या भाषा, क्या संस्कृत, [श्रीभगवान्‌के गुण गानेके लिये तो] सच्चा प्रेम चाहिये। जहाँ कम्बलहीसे काम चल जाता हो, वहाँ बढ़िया दुशाल लेकर क्या करना है? ॥५७२॥

रामकी दीनबन्धुता

मनि मानिक महँगे किये सहँगे तृन जल नाज।
तुलसी एते जानिए राम गरीब नेवाज ॥५७३॥

भावार्थ—तुलसीदासजी कहते हैं कि बस, इतना जान रखना चाहिये कि श्रीरामचन्द्रजी गरीबनिवाज—दीनबन्धु हैं। इसीसे उन्होने मणि-माणिक्य आदि (जिनके विना आनन्दसे हमारा काम चल सकता है) महँगे किये हैं और तृण, जल तथा अन्न (जिनके विना पशु-पक्षी और मनुष्यादि प्राणियोका काम ही नही चल सकता) आदि वस्तुओंको सस्ता कर दिया है ॥५७३॥